DRAMA-II & DRAMATURGY

निर्देशकः दूर निरन्तर शिक्षा निर्देशालयः

UTKAL UNIVERSITY

NAAC ACCREDITED A+

D.D.C.E.

Education for All

ଦୂରନିରନ୍ତର ଶିକ୍ଷା ନିର୍ଦ୍ଦେଶାଳୟ, ଉତ୍କଳ ବିଶ୍ୱବିଦ୍ୟାଳୟ
DIRECTORATE OF DISTANCE & CONTINUING EDUCATION
UTKAL UNIVERSITY

सूचिपत्रम्

विषयक्रमः

Unit-I अभिज्ञानशाकुन्तलम् (Act-V)

Unit-II अभिज्ञानशाकुन्तलम् (Act-VI)

Unit- III अभिज्ञानशाकुन्तलम् (Act-VII)

Unit- IV साहित्यस्यदर्पण (Chapter-VI)

(*Nāndi, Prastāvanā, Purvaranga, Nātaka, Prakaraṇa, Pancasandhi, panca-Arthaprakṛti* and *Panca-arthopaksepaka*)

Unit-I

अभिज्ञानशाकुन्तलम्

अभिज्ञान शाकुन्तलम् महाकवि कालिदास का विश्वविख्यात नाटक है जिसका अनुवाद प्रायः सभी विदेशी भाषाओं में हो चुका है।[1] इसमें राजा दुष्यन्त तथा शकुन्तला के प्रणय, विवाह, विरह, प्रत्याख्यान तथा पुनर्मिलन की एक सुन्दर कहानी है। पौराणिक कथा में दुष्यन्त को आकाशवाणी द्वारा बोध होता है पर इस नाटक में कवि ने मुद्रिका द्वारा इसका बोध कराया है।

इसकी नाटकीयता, इसके सुन्दर कथोपकथन, इसकी काव्य-सौन्दर्य से भरी उपमाएँ और स्थान-स्थान पर प्रयुक्त हुई समयोचित सूक्तियाँ; और इन सबसे बढ़कर विविध प्रसंगों की ध्वन्यात्मकता इतनी अद्भुत है कि इन दृष्टियों से देखने पर संस्कृत के भी अन्य नाटक अभिज्ञान शाकुन्तल से टक्कर नहीं ले सकते; फिर अन्य भाषाओं का तो कहना ही क्या ! तो यहीं सबसे ज्यादा अच्छा है।

(कालिदास) ने अभिज्ञान शाकुन्तल की कथावस्तु मौलिक नहीं चुनी। यह कथा महाभारत के आदिपर्व से ली गई है। यों पद्मपुराण में भी शकुन्तला की कथा मिलती है और वह महाभारत की अपेक्षा शकुन्तला की कथा के अधिक निकट है। इस कारण विन्टरनिट्ज़ की कथा पद्मपुराण से ली गई है। परन्तु विद्वानों का कथन है कि पद्मपुराण का यह भाग शकुन्तला की रचना के बाद लिखा और बाद में प्रक्षिप्त प्रतीत होता है।

महाभारत की कथा में दुर्वासा के शाप का उल्लेख नहीं है। महाभारत का दुष्यन्त से यदि ठीक उलटा नहीं, तो भी बहुत अधिक भिन्न है।

महाभारत की शकुन्तला भी कालिदास की भांति सलज्ज नहीं है। वह दुष्यन्त को विश्वामित्र और मेनका के सम्बन्ध के फलस्वरुप हुए अपने जन्म की कथा अपने मुंह से ही सुनाती है। महाभारत में दुष्यन्त शकुन्तला के रूप पर मुग्ध होकर शकुन्तला से गांधर्व विवाह की प्रार्थना करता है; जिस पर शकुन्तला कहती है कि मैं विवाह इस शर्त पर कर सकती हूं कि राजसिंहासन मेरे पुत्र को ही मिले। दुष्यन्त उस समय तो स्वीकार कर लेता है और बाद में अपनी राजधानी में लौटकर जान-बूझकर लज्जावश शकुन्तला को ग्रहण नहीं करता। कालिदास ने इस प्रकार अपरिष्कृत रूप में प्राप्त हुई कथा को अपनी कल्पना से अद्भुत रूप में निखार दिया है। दुर्वासा के शाप की कल्पना करके उन्होंने दुष्यन्त के चरित्र को ऊंचा उठाया है। कालिदास की शकुन्तला भी आभिजात्य, सौंदर्य और करुणा की मूर्ति है। इसके अतिरिक्त कालिदास ने सारी कथा का निर्वाह, भावों का चित्रण इत्यादि जिस ढंग से किया है, वह मौलिक और अपूर्व है।

शकुंतला राजा दुष्यन्त की पत्नी थी जो भारत के सुप्रसिद्ध राजा भरत की माता और मेनका अप्सरा की कन्या थी। महाभारत में लिखा है कि शंकुतला का जन्म मेनका अप्सरा के गर्भ से हुआ था जो इसे वन में छोड़कर चली गई थी। वन में शंकुतों (पक्षियों) आदि ने हिंसक पशुओं से इसकी रक्षा की थी, इसी से इसका नाम शकुंतला पड़ा। वन में से इसे कण्व ऋषि उठा लाए थे और अपने आश्रम में रखकर कन्या के समान पालते थे।

एक बार राजा दुष्यन्त अपने साथ कुछ सैनिकों को लेकर शिकार खेलने निकले और घूमते फिरते कण्व ऋषि के आश्रम में पहुँचे। ऋषि उस समय वहाँ उपस्थित नहीं थे; इससे युवती शकुन्तला ने ही राजा दुष्यंत का आतिथ्य सत्कार किया। उसी अवसर पर दोनों में प्रेम और फिर गंधर्व विवाह हो गया। कुछ दिनों बाद राजा दुष्यंत वहाँ से अपने राज्य को चले गए। कण्व मुनि जब लौटकर आए, तब यह जानकर बहुत प्रसन्न हुए कि शकुंतला का विवाह दुष्यंत से हो गया। शकुंतला उस समय गर्भवती हो चुकी थी। समय पाकर उसके गर्भ से बहुत ही बलवान् और तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम 'भरत' रखा गया। कहते हैं, 'भारत' नाम 'भरत' के नाम पर ही पड़ा।

कुछ दिनों बाद शकुंतला अपने पुत्र को लेकर दुष्यन्त के दरबार में पहुँची। परन्तु शकुन्तला को बीच में दुर्वासा ऋषि का शाप मिल चुका था। राजा ने इसे बिल्कुल नहीं पहचाना और स्पष्ट कह दिया कि न तो मैं तुम्हें जानता हूँ और न तुम्हें अपने यहाँ आश्रय दे सकता हूँ। परंतु इसी अवसर पर एक आकाशवाणी हुई, जिससे राजा को विदित हुआ कि यह मेरी ही पत्नी है और यह पुत्र भी मेरा ही है। उन्हें कण्व मुनि के आश्रम की सब बातें स्मरण हो आईं और उन्होंने शकुंतला को अपनी प्रधान रानी बनाकर अपने यहाँ रख लिया।

‘अभिज्ञान शाकुन्तलम्’ में अनेक मार्मिक प्रसंगों को उल्लेख किया गया है। एक उस समय, जब दुष्यन्त और शकुन्तला का प्रथम मिलन होता है। दूसरा उस समय, जब कण्व शकुन्तला को अपने आश्रम से पतिगृह के लिए विदा करते हैं। उस समय तो स्वयं ऋषि

कहते हैं कि मेरे जैसे ऋषि को अपनी पालिता कन्या में यह मोह है तो जिनकी औरस पुत्रियां पतिगृह के लिए विदा होती हैं उस समय उनकी क्या स्थिति होती होगी।

तीसरा प्रसंग है, शकुन्तला का दुष्यन्त की सभा में उपस्थित होना और दुष्यन्त को उसको पहचानने से इनकार करना। चौथा प्रसंग है उस समय का, जब मछुआरे को प्राप्त दुष्यन्त के नाम वाली अंगूठी उसको दिखाई जाती है। और पांचवां प्रसंग मारीचि महर्षि के आश्रम में दुष्यन्त-शकुन्तला के मिलन का।

शकुन्तला में कालिदास का सबसे बड़ा चमत्कार उसके ध्वन्यात्मक संकेतों में है। इसमें कवि को विलक्षण सफलता यह मिली है कि उसने कहीं भी कोई भी वस्तु निष्प्रयोजन नहीं कही। कोई भी पात्र, कोई भी कथोप-कथन, कोई भी घटना, कोई भी प्राकृतिक दृश्य निष्प्रयोजन नहीं है। सभी घटनाएं यह दृश्य आगे आने वाली घटनाओं का संकेत चमत्कारिक रीति से पहले ही दे देते हैं। नाटक के प्रारम्भ में ही ग्रीष्म-वर्णन करते हुए वन-वायु के पाटल की सुगंधि से मिलकर सुगंधित हो उठने और छाया में लेटते ही नींद आने लगने और दिवस का अन्त रमणीय होने के द्वारा नाटक की कथा-वस्तु की मोटे तौर पर सूचना दे दी गई है, जो क्रमशः पहले शकुन्तला और दुष्यन्त के मिलन, उसके बाद नींद-प्रभाव से शकुन्तला को भूल जाने और नाटक का अन्त सुखद होने की सूचक है। इसी प्रकार नाटक के प्रारम्भिक गीत में भ्रमरों द्वारा शिरीष के फूलों को ज़रा-ज़रा-सा चूमने से यह संकेत मिलता है कि दुष्यन्त और शकुन्तला का मिलन अल्पस्थायी होगा। जब राजा धनुष पर बाण चढ़ाए हरिण के पीछे दौड़े जा रहे हैं, तभी कुछ तपस्वी आकर रोकते हैं। कहते हैं-'महाराज' यह आश्रम का हरिण है, इस पर तीर न चलाना।' यहां

हरिण के अतिरिक्त शकुन्तला की ओर भी संकेत है, जो हरिण के समान ही भोली-भाली और असहाय है। 'कहां तो हरिणों का अत्यन्त चंचल जीवन और कहां तुम्हारे वज्र के समान कठोर बाण !' इससे भी शकुन्तला की असहायता और सरलता तथा राजा की निष्ठुरता का मर्मस्पर्शी संकेत किया गया है। जब दुष्यन्त और शकुन्तला का प्रेम कुछ और बढ़ने लगता है, तभी नेपथ्य से पुकार सुनाई पड़ती है कि 'तपस्वियो, आश्रम के प्राणियों की रक्षा के लिए तैयार हो जाओ। शिकारी राजा दुष्यन्त यहां आया हुआ है।' इसमें भी दुष्यन्त के हाथों से शकुन्तला की रक्षा की ओर संकेत किया गया प्रतीत होता है, परन्तु यह संकेत किसी के भी कान में सुनाई नहीं दिया; शकुन्तला को किसी ने नहीं बचाया। इससे स्थिति की करुणाजनकता और भी अधिक बढ़ जाती है।

चौथे अंक के प्रारम्भिक भाग में कण्व के शिष्य ने प्रभात का वर्णन करते हुए सुख और दुःख के निरन्तर साथ लगे रहने का तथा प्रिय के वियोग में स्त्रियों के असह्य दुःख का जो उल्लेख किया है, वह दुष्यन्त द्वारा शकुन्तला का परित्याग किए जाने के लिए पहले से ही पृष्ठभूमि-सी बना देता है। पांचवें अंक में रानी हंसपदिका एक गीत गाती हैं, जिसमें राजा को उनकी मधुर-वृत्ति के लिए उलाहना दिया गया है। दुष्यन्त भी यह स्वीकार करते हैं कि उन्होंने हंसपदिका से एक ही बार प्रेम किया है। इससे कवि यह गम्भीर संकेत देता है कि भले ही शकुन्तला को दुष्यन्त ने दुर्वासा के शाप के कारण भूलकर छोड़ा, परन्तु एक बार प्यार करने के बाद रानियों की उपेक्षा करना उनके लिए कोई नई बात नहीं थी। अन्य रानियां भी उसकी इस मधुकर-वृत्ति का शिकार थीं। हंसपादिका के इस गीत की पृष्ठभूमि में शकुन्तला के परित्याग की घटना और भी क्रूर और कठोर जान पड़ती है।

इसी प्रकार के ध्वन्यात्मक संकेतों से कालिदास ने सातवें अंक में दुष्यन्त, शकुन्तला और उसके पुत्र के मिलने के लिए सुखद पृष्ठभूमि तैयार कर दी है। इन्द्र राजा दुष्यन्त को अपूर्व सम्मान प्रदान करते हैं। उसके बाद हेमकूट पर्वत पर प्रजापति के आश्रम में पहुंचते ही राजा को अनुभव होने लगता है कि जैसे वह अमृत के सरोवर में स्नान कर रहे हों। इस प्रकार के संकेतों के बाद दुष्यन्त और शकुन्तला का मिलन और भी अधिक मनोहर हो उठता है।

जर्मन कवि गेटे ने अभिज्ञान शाकुन्तलं के बारे में कहा था-

"यदि तुम युवावस्था के फूल प्रौढ़ावस्था के फल और अन्य ऐसी सामग्रियां एक ही स्थान पर खोजना चाहो जिनसे आत्मा प्रभावित होता हो, तृप्त होता हो और शान्ति पाता हो, अर्थात् यदि तुम स्वर्ग और मर्त्यलोक को एक ही स्थान पर देखना चाहते हो तो मेरे मुख से सहसा एक ही नाम निकल पड़ता है- शाकुन्तलम्, महान कवि कालिदास की एक अमर रचना!"

इसी प्रकार संस्कृत के विद्वानों में यह श्लोक प्रसिद्ध है-

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।

तत्रापि च चतुर्थोऽकस्तत्र श्लोकचतुष्टयम्॥

इसका अर्थ है - *काव्य के जितने भी प्रकार हैं उनमें नाटक विशेष सुन्दर होता है। नाटकों में भी काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से अभिज्ञान शाकुन्तलं का नाम सबसे ऊपर है। अभिज्ञान शाकुन्तलं का नाम सबसे ऊपर है। अभिज्ञान*

शाकुन्तलं में भी उसका चतुर्थ अंक और इस अंक में भी चौथा श्लोक तो बहुत ही रमणीय है।

अभिज्ञान शाकुन्तल में नाटकीयता के साथ-साथ काव्य का अंश भी यथेष्ट मात्रा में है। इसमें श्रृंगार मुख्य रस है; और उसके संयोग तथा वियोग दोनों ही पक्षों का परिपाक सुन्दर रूप में हुआ है। इसके अतिरिक्त हास्य, वीर तथा करुण रस की भी जहां-तहां अच्छी अभिव्यक्ति हुई है। स्थान-स्थान पर सुन्दर और मनोहरिणी उतप्रेक्षाएं न केवल पाठक को चमत्कृत कर देती हैं, किन्तु अभीष्ट भाव की तीव्रता को बढ़ाने में ही सहायक होती हैं। सारे नाटक में कालिदास ने अपनी उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं का उपयोग कहीं भी केवल अलंकार-प्रदर्शन के लिए नहीं किया। प्रत्येक स्थान पर उनकी उपमा या उत्प्रेक्षा अर्थ की अभिव्यक्ति को रसपूर्ण बनाने में सहायक हुई है।

कालिदास अपनी उपमाओं के लिए संस्कृत-साहित्य में प्रसिद्ध हैं। शाकुन्तल में भी उनकी उपयुक्त उपमा चुनने की शक्ति भली-भांति प्रकट हुई। शकुन्तला के विषय में एक जगह राजा दुष्यन्त कहते हैं कि 'वह ऐसा फूल है, जिसे किसी ने सूंघा नहीं है; ऐसा नवपल्लव है, जिस पर किसी के नखों की खरोंच नहीं लगी; ऐसा रत्न है, जिसमें छेद नहीं किया गया और ऐसा मधु है, जिसका स्वाद किसी ने चखा नहीं है।' इन उपमाओं के द्वारा शकुन्तला के सौंदर्य की एक अनोखी झलक हमारी आंखों के सामने आ जाती है। इसी प्रकार पांचवें अंक में दुश्यन्त शकुन्तला का परित्याग करते हुए कहते हैं कि

'हे तपस्विनी, क्या तुम वैसे ही अपने कुल को कलंकित करना और मुझे पतित करना चाहती हो, जैसे तट को तोड़कर बहने वाली नदी तट के वृक्ष को तो गिराती ही है और अपने जल को भी मलिन कर लेती है।' यहां शकुन्तला की तट को तोड़कर बहने वाली नदी से दी गई उपमा राजा के मनोभाव को व्यक्त करने में विशेष रूप से सहायक होती है। इसी प्रकार जब कण्व के शिष्य शकुन्तला को साथ लेकर दुष्यन्त के पास पहुंचते हैं तो दुष्यन्त की दृष्टि उन तपस्वियों के बीच में शकुन्तला के ऊपर जाकर पड़ती है। वहां शकुन्तला के सौंदर्य का विस्तृत it. Of love in ,,0 न करके कवि ने उनके मुख से केवल इतना कहलवा दिया है कि 'इन तपस्वियों के बीच में वह घूंघट वाली सुन्दरी कौन है, जो पीले पत्तों के बीच में नई कोंपल के समान दिखाई पड़ रही है।' इस छोटी-सी उपमा ने पीले पत्ते और कोंपल की सदृश्यता के द्वारा शकुन्तला के सौन्दर्य का पूरा ही चित्रांकन कर दिया है। इसी प्रकार सर्वदमन को देखकर दुष्यन्त कहते हैं कि 'यह प्रतापी बालक उस अग्नि के स्फुलिंग की भांति प्रतीत होता है, जो धधकती आग बनने के लिए ईधन की राह देखता है।' इस उपमा से कालिदास ने न केवल बालक की तेजस्विता प्रकट कर दी, बल्कि यह भी स्पष्ट रूप से सूचित कर दिया है कि यह बालक बड़ा होकर महाप्रतापी चक्रवर्ती सम्राट बनेगा। इस प्रकार की मनोहर उपमाओं के अनेक उदाहरण शाकुन्तल में से दिये जा सकते हैं क्योंकि शाकुन्तल में १८० उपमाएं प्रयुक्त हुईं हैं। और उनमें से सभी एक से एक बढ़कर हैं।

यह ठीक है उपमा के चुनाव में कालिदास को विशेष कुशलता प्राप्त थी और यह भी ठीक है कि उनकी-सी सुन्दर उपमाएँ अन्य कवियों की रचनाओं में दुर्लभ हैं, फिर भी कालिदास की सबसे बड़ी विशेषता उपमा-कौशल नहीं है। उपमा-कौशल तो उनके काव्य-कौशल का एक सामान्य-सा अंग है। अपने मनोभाव को व्यक्त करने अथवा किसी रस का परिपाक करने अथवा किसी भाव की तीव्र अनुभूति को जगाने की कालिदास अनेक विधियां जानते हैं। शब्दों का प्रसंगोचित चयन, अभीष्ट भाव के उपयुक्त छंद का चुनाव और व्यंजना-शक्ति का प्रयोग करके कालिदास ने अपनी शैली को विशेष रूप से रमणीय बना दिया है।

जहां कालिदास शकुन्तला के सौन्दर्य-वर्णन पर उतरे हैं, वहां उन्होंने केवल उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं द्वारा शकुन्तला का रूप चित्रण करके ही सन्तोष नहीं कर लिया है। पहले-पहले तो उन्होंने केवल इतना कहलवाया कि 'यदि तपोवन के निवासियों में इतना रूप है, तो समझो कि वन-लताओं ने उद्यान की लताओं को मात कर दिया।' फिर दुष्यन्त के मुख से उन्होंने कहलवाया कि 'इतनी सुन्दर कन्या को आश्रम के नियम-पालन में लगाना ऐसा ही है जैसे नील कमल की पंखुरी से बबूल का पेड़ काटना।' उसके बाद कालिदास कहते हैं कि 'शकुन्तला का रूप ऐसा मनोहर है कि भले ही उसने मोटा वल्कल वस्त्र पहना हुआ है, फिर उससे भी उसका सौंदर्य कुछ घटा नहीं, बल्कि बढ़ा ही है। क्योंकि सुन्दर व्यक्ति को जो भी कुछ पहना दिया जाए वही

उसका आभूषण हो जाता है।' उसके बाद राजा शकुन्तला की सुकुमार देह की तुलना हरी-भरी फूलों से लदी लता के साथ करते हैं, जिससे उस विलक्षण सौदर्य का स्वरूप पाठक की आंखों के सामने चित्रित-सा हो उठता है। इसके बाद उस सौंदर्य की अनुभूति को चरम सीमा पर पहुंचाने के लिए कालिदास एक भ्रमर को ले आए हैं; जो शकुन्तला के मुख को एक सुन्दर खिला हुआ फूल समझकर उसका रसपान करने के लिए उसके ऊपर मंडराने लगता है। इस प्रकार कालिदास ने शकुन्तला के सौंदर्य को चित्रित करने के लिए अंलकारों का सहारा उतना नहीं लिया, जितना कि व्यंजनाशक्ति का; और यह व्यजना-शक्ति ही काव्य की जान मानी जाती है।

पञ्चम अङ्कः

अथास्मिन् वयस्येन माधव्येन सह राजधान्यां नागरिकवृत्या लयतालबद्धं हंसपदिकागीतं निशम्य तदर्थं स्मारं स्मारं कामप्यन्तर्व्यथामानुभवति राजा दुष्यन्तः । अत्रैवान्तरे कुलपतेः कण्वस्यादेशमादाय तपोवनात् सस्त्रीकाः तपस्विनः समायाता इति कञ्चुकी निवेदते । ते श्रौतेन विधिना सत्कृत्य यशालायां प्रवेशयितव्या इत्यादिश्य राजापि तान् प्रतिपालयितुं तत्रोपतिष्ठते । ततः सोमरातः पुरोहितो राजाज्ञया श्रौतेन विधिना तान् सत्कृत्य शालामुपस्थापयत्। तच्च प्रविष्टास्ते आशीर्वचनपूर्वकं राज्ञे अवगुण्ठनवती शकुन्तलामधिकृत्य कण्वस्य सन्देशं न्यवेदयन् -

सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयां, जनोऽन्यथा भर्तृमतीं विशङ्कते।

अतः समीपे परिणेतुरिष्यते, प्रियाप्रिया वा प्रमदा स्वबन्धुभिः।।[१०]

परं महर्षेः दुर्वाससः शापप्रभावेण स शकुन्तलायाः परिणयविधिं विसस्मार अकथयच्च यत्, भो भोः तपस्विनः! निपुणं विचारयन्नपि न स्मरामि अस्याः देव्याः पाणिग्रहणम् । तत्कथमिमामभिव्यक्तसत्त्वलक्षणां प्रति आत्मानं क्षत्रिणं मन्यमानः प्रतिपत्स्ये। तत्कण्वस्यान्तेवासिनां साधिक्षेरमुक्तोऽपि शकुन्तलायाः अवगुण्ठनापनयनानन्तरं प्रत्यक्षीकृत्यापि यदा नाङ्गी चकार तदाऽभिज्ञानेन तस्य शङ्कामपनेतुं शकुन्तला प्रववृते, परमङ्गुलीयकशून्यामङ्गुलीं दृष्ट्वा परमं विषण्णा सती तस्मै दीर्घापाङ्गमृगशावक जलपानप्रत्ययवचनं दत्तवती । तथापि वैफल्ये सति राजाऽवोचत् - आत्मकार्ये निर्वर्तनीनामनृतवाङ्माधुरीभिः विषयिण आकृष्यन्ते। उड्डयनशक्तेः पूर्वं परभृतः स्वानि अपत्यानि काकैः परिपोषयन्ति । अशिक्षितास्वपि स्त्रीषु परवञ्चनकौशलं प्रसिद्धमेव । अतो वनवासवर्धितापीयं शकुन्तला स्त्रीभावसुलभं वञ्चनकौशलं जानात्येव। यदि स्त्रीजातौ समुत्पन्नासु शिक्षणं विनैव नैसर्गिकं वञ्चनपङ्कत्वं दृश्यते, तर्हि वाग्व्यवहारकुशलासु मानुषीषु किं वक्तव्यम्?

स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु, संदृश्यते किमुत याः प्रतिबोधवत्यः।

प्रागन्तरिक्षगमनात् स्वमपत्यजातम्, अन्यैर्द्विजैः परभृताः खलु पोषयन्ति।।[११]

त्वं जनयित्वा जङ्गके उत्सृष्टा कोकिलेवपरैः भृतासि । अतः कामं गच्छ, तिष्ठ वा यदेच्छं कुर। एवं स्वजनन्युपमर्देन सन्तप्ता शकुन्तला दुष्यन्तं प्रति - अनार्य ! आत्मनोऽनुमानेन सर्वान् प्रेक्षसे इति। तृणैराच्छन्नकूपस्य इव धर्मकञ्चुकिनः त्वत्तोन्य संसारे कः पापबुद्धिः। ततो गौतमी - जाते! पुरुवंशप्रत्ययेन मधुरभाषिणो हृदयनिहितविषस्य दुष्यन्तस्य हस्ते त्वमुपगता। ततः सकुन्तला पटान्तरे मुखमाच्छाद्य रोदिति। ततः शारद्वतोऽब्रवीत् -

शार्ङ्गरव! किमुत्तर-प्रत्युत्तरेण। अस्माभिः गुरोर्नियोगोऽनुष्ठितः प्रतिनिवर्तामहे। राजानं प्रति इयं ते पत्नी त्यजैनां गृहाण वा। गौतमि! किमुत्तर-प्रत्युत्तरेण। अअस्माभिः गुरोः नियोगोऽनिष्ठितः प्रतिनिवर्तामहे। राजानं प्रति इयं ते पत्नी त्यजैनां गृहाण वा। गौतमि! गच्छाग्रतः। शकुन्तले! पतिकुले ते दास्यमपि शुचिव्रतमित्यादिश्य सर्वे प्रस्थिताः।

राज्ञा समयोचितं कर्तव्यें पुष्टः पुरोधा प्रोक्तवान् - इयं देवी तावत् मम गेहे एवाप्रसवं तिष्ठतु। त्वं प्रथमं चक्रवर्तिनं पुत्रं जनायिष्यसीति सिद्धैरादिष्टम्। तत् यदि मुनिदौहित्रः तल्लक्षणोपपन्नः स्यात्तर्हि इमामनभिनन्धान्तःपुरे प्रवेशयिष्यसि, विपर्ययेऽस्याः पितुः समीपे गमनमुचितम्। राज्ञानुमतो।सौ यदास्वगृहं गन्तुं प्रववृते तदैव 'भवगति वसुधे! देहि मे विवरमि'त्यभिदधाना स्वानि भाग्यानि च निन्दन्तीं क्रन्दमानां च तां शकुन्तलां स्त्रीसद्दशमेकं ज्योतिरुत्क्षिप्याप्सरस्तीर्थे जगामेति पुरोहितो निवेदयति। तस्मिन्नुदन्ते साश्चर्यः पर्याकुलो राजा शयनागारं प्रविष्टश्चिन्तयति -

कामं प्रत्यदिष्टां स्मरामि न परिग्रहं मनु्ेस्तनयाम्।

बकवत्तु दूयमानं प्रत्यापयतीव मे हृदयम्।।[१२]

Unit-II अभिज्ञानशाकुन्तलम् (Act-VI)

षष्ठ अङ्कः

अभिज्ञान शाकुन्तलम् महाकवि कालिदासेन विरचितमेकं बहु प्रसिद्धं नाटकम् अस्ति। अस्य नाटकस्य नायकः दुष्यन्तः नायिका शकुन्तला चास्ति। दुष्यन्तः शकुन्तलया सह गान्धर्व-विवाहं कृतवान्, तदा सः स्मृतिचिन्हं नाम अङ्गुलीयकं दत्तवान्। तत् अभिज्ञानं मुनेः दुर्वाससः शापेन विलुप्तमभवत्। शापवशात् राजा दुष्यन्तः शकुन्तलां विस्मृतवान्।

रविवर्मणा रचिता शकुन्तला- महाभारतस्य किञ्चन पात्रम्

तदनन्तरं दुष्यन्तेनापमानिता गर्भवती सा वनाश्रमे निवसन्ती भरतनामकं पुत्रमजनयत् । द्वादशवर्षानन्तरं केनचिद् धीवरेण तदंगुलीयकमभिधानं दुष्यन्तः लब्धवान् । तद् दृष्ट्वैव संपूर्णं पूर्ववृत्तं स्मृतवान्। विरहशोकाकुलः सः शकुन्तलामन्वेष्टुं वने परिभ्रमन् तत्राश्रमे गतवान्। तत्र भरतेन सह शकुन्तला मिलितवती । नाटकस्यास्य विश्वसाहित्येऽत्यधिकं महत्त्वं वर्तते। साहित्यसमीक्षकाः कथयन्ति यत् --

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।
तत्रापि चतुर्थोंकः तत्र श्लोकचतुष्टयम् ।।

शेक्सपियर् तुलनां जनाः कालिदासस्य सह कुर्वन्ति। शाकुन्तलविषये गटेनामकस्य जर्मनकवे:अभिप्राय: अभिज्ञानशाकुन्तलं नाटकस्य मूलकथावस्तु महाभारतात् आदिपर्वणः शकुन्तलोपाख्यानात् उद्धृतम् ।

नाटकेऽस्मिन् नायिका शाकुन्तला नायकेन राज्ञा दुष्यन्तेन गान्धर्वविवाहविधिना परिणीता । स्वनगरं प्रति परावर्तमानेन तेन “ एकैकमत्र दिवसे दिवसे मदीयं,

नामाक्षरं गणय, गच्छसि यावदन्तम्" ॥ इत्युक्त्वा स्वनामङ्कितमंगुलीयकं स्वयमेव शाकुन्तलायाः हस्ते परिधापितम् । इत्यभिज्ञानविषयिणी घटना महाभारतस्यादिपर्वात् गृहीता ।

"अभिज्ञायते अनेन इति अभिज्ञानम् चिह्नमिति, अभि+ ज्ञा + ल्युट् । शकुन्तैः लालिता शकुन्तला । शकुन्तलामधिकृत्य कृतं नाटकं शाकुन्तलम् 'अधिकृत्यकृते ग्रन्थे' इति सूत्रेण 'अण्' प्रत्ययः । अभिज्ञानप्रधानं शाकुन्तलम् 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' इति व्युत्पतिं दर्शं दर्शं सिध्दमेव अभिज्ञानशाकुन्तलस्य समस्या प्रधानत्वम्, नायिकाप्रधानत्वं च । अतः समस्यां नायिकां च आदाय कृतमस्य 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' इति नामकरणं सर्वथा सफलमुचितम् चास्ति । अथवा – अभिज्ञानसहितं शाकुन्तलम् अभिज्ञानशाकुन्तलम् । अथवा अभिज्ञानञ्च शकुन्तलाञ्च इति अभिज्ञानशाकुन्तलम् । कालिदासस्य सर्वस्वमभिज्ञानशाकुन्तलम् । अभिज्ञानशाकुन्तले चतुर्थेऽङ्के कविः कण्वरुपेण उपस्तितोऽस्ति ।

अभिज्ञानशाकुन्तलस्य चतुर्थेऽङ्के लौकिकालौकिक प्रकृतिमानवयोः विलक्षणं समन्वयोऽस्ति । *वनौकसोऽपि वयं लौकिकज्ञा एव* इति कण्वस्य उद्घोषणा चतुर्थाऽङ्कस्य वैशिष्ट्यं द्विगुणयति । अरण्यवासिन्याः शाकुन्तलायाः पतिगृह- हस्तिना पुरगमनम् अरण्यराजप्रसादयोः किमपि विलक्षणं सम्बन्धं प्रतिपादयति । दुर्वाससः शापः, आकाशवाणी, शकुन्तलायाः पतिगृहगमनम्, वनस्पतिभ्यः शकुन्तलायै आभूषणप्रदानम्, कोकिलरवेण शकुन्तलायाः पतिगृहगमनाय वनस्पतीनां स्वीकृतिः , मृगशावकेन शकुन्तलामार्गावरोधः, शकुन्तलायाः प्रस्थानं चेति चतुर्थोऽङ्कस्य महत्वपूर्णाः घटनाः सन्ति । अभुज्ञानशाकुन्तलस्य चमत्कारो दुर्वाससः शापघटनायामाश्रितोऽस्ति, अत एव अंकोऽयं

विशिष्टं स्थानं बिभर्ति । **सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्** इत्यनेन शकुन्तलायाः पतिगृहगमनाय अनुज्ञा प्रार्थिता ।

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डुतरुणा मांगल्यमाविष्कृतम् इत्यनेन शकुन्तलायै वनस्पतिभि आभूषणप्रदानमपि विशिष्टा घटना अस्ति । अस्मान् साधु विचिन्त्य " इति महर्षिणा कण्वेन दुष्यन्ताय तथा 'शुश्रूषस्व गुरुन् कुरु'- इत्यनेन शाकुन्तलायै कृत उपदेशः शाश्वतिकः तथा समाजे सर्वेषां कृते महदुपयोगी अस्ति ।

आपरितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोग-विज्ञानम् ।

बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः ॥

ग्रन्थारम्भे सूत्रधारेण पात्राणां अवधानोपदेशार्थम् उक्तेसति **सुविदितप्रयोगतयार्थस्य न किमपि परिहास्यते** इति नटीवचनं श्रुत्वा सूत्रधारमुखेन महाकविः भूतार्थं कथयति – प्राज्ञानां सन्तोषपर्यन्तम् अभिनयकौशलं समीचीनं न स्वीकरोमि । कृताभ्यासानां निपुणानामपि सुदृढं चित्तं स्वविषये अविश्वस्तं भवति । ईदृशः वाग्व्यवहारः महाकवेः गुण-गौरवमेव प्रथयति ।

पुरुवंशस्य राजा दुष्यन्तः कदाचित् मृगयां कुर्वन् अटव्यां हरिणं अनुधावन् मालिनीतीरे विद्यमानस्य कण्वस्य आश्रमं प्रविशति । कण्वः फलपुष्पाणि आनेतुं गत इत्यतः काचित् सुन्दरी तापसकन्या तस्मै स्वागतं करोति । अर्घ्यपाद्यादिभिः सत्करोति सा । तस्याः रूपेण मोहितः दुष्यन्तः स्वपरिचयं तस्यै कुर्वन् तां प्रति - त्वं क्षत्रियोऽसि ? त्वां प्रति मम मनः आकर्षति । अहं त्वां कामये इत्यवदत् । शकुन्तला तु - अहं मेनकाविश्वामित्रयोः पुत्री इति,

ताभ्यां यदा परित्यक्ताहं शकुन्तपक्षिभिः रक्षिता इति, ततः कण्वमहर्षिः वने मां दृष्ट्वा आश्रमं प्रति आनीय पोषितवान् इति । शकुन्तपक्षिभिः रक्षिता अहं शकुन्तला इति नामधेयं प्राप्नवम्। यदि मां वोढुं वाञ्छसि तर्हि कण्वमहर्षेः अनुमतिः अपेक्षिता इत्यादिकं सर्वं वृत्तान्तम् अकथयत् ।

दुष्यन्तः तु क्षत्रियाः गान्धर्वविधिना परिणेतुं शक्नुवन्ति । तदर्थं कण्वस्य आक्षेपः न स्यादिति, त्वयि जायमानमेव उत्तराधिकारिरूपेण ताम् अङ्गीकारयित्वा तस्याः पुत्रमेव युवराजं करिष्यामि इति प्रतिश्रुण्वानः तां परिणीतवान् । अग्रे तस्यै राजयोग्यानि वेषभूषणानि सेवकद्वारा प्रेषयामि इति उक्त्वा कण्व मम विषये किं वदेत् इति चिन्तयन्नेव स्वनगरं प्रायात्।

कण्वे आश्रमं प्रत्यागते शकुन्तला तस्य शिरसः उपरि विद्यमानं भारम् अवतारयति । तथापि तस्य मुखं अदृष्ट्वा लज्जया अधोमुखी तिष्ठति । कण्वे लज्जायाः कारणं पृच्छति सति शकुन्तला दुश्यन्तेन साकं कृतविवाहवृत्तन्तं अकथयत् । दिव्यदृष्ट्या सर्वविदितः कण्वः - ”वत्से ! त्वया कृतः अधर्मः न । क्षत्रियाणां गान्धर्वविधिना परिणयः सम्मतः” इति समर्थयति । कालक्रमेण गर्भवती शकुन्तला रूपगुणसम्पन्नोपेतं सुतं असूत । पुत्रस्य षट् वर्षाणि अतीतानि चेदपि दुष्यन्तः नागतः । सः अपि आरम्भदिनेषु कण्वः किमपि वदेत् इति चिन्तयन् न प्रवर्तते स्म, क्रमेण शकुन्तलायाः विषयः तेन विस्मृतः । परं सा तु तं निरीक्षमाणा खिद्यते स्म । बालस्तु धीरः सन् वनस्य सर्वप्राणिनः अपि निगृह्य आत्मानं "सर्वदमन" इति परिचाययति स्म । तं यौवराज्याय अर्हं मन्वानः कण्वः मुहूर्तं निश्चित्य स्वशिष्यैः सह शकुन्तलां तत्पुत्रं च दुष्यन्तस्य राजधानीं प्रति प्रेषयामास ।

शोकाकुला शकुन्तला

यदा शकुन्तला पतिगृहं प्रस्थिता तदा पालितपितुः कण्वस्य नेत्रे अश्रुपूर्णे भवतः । तच्छिष्याः तां राजधानीं प्रापय्य प्रत्यागच्छन्ति । पुत्रेण सह शकुन्तला राजसभायां दुष्यन्तं दृष्ट्वा स्ववृत्तान्तं सर्वं निवेदयति । तस्याः वचनेन स्मृतपूर्ववृत्तान्तः राजा अपि लोकापवादात् भीतः अहं किमपि नजाने इति वदति । तामुद्दिश्य - शकुन्तले ! का त्वम् ? कुतः अत्र आगतं त्वया ? किं साहाय्यम् अपेक्षितम् ? इति अपरिचितः इव सम्भाषते । ततः शकुन्तला - "महाराज ! अयं तव पुत्रः । त्वया आश्रमे दत्तवचनानुसारं तव राज्यस्य उत्तराधिकारी भविता । यदा त्वया आश्रमं प्रति आगतं तदा प्रवृत्तं सर्वं स्मर" इत्यादि रीत्या अभियाचते । दुष्यन्तः शकुन्तलां न विस्मृतवान् आसीत् परं तस्मिन् क्षणे किमपि अजानन् इव -

धर्मार्थकामसम्बन्धं न स्मरामि त्वया सह ।
गच्छ वा तिष्ठ वा कामं यद्वापीच्छसि तत् कुरु ॥

अस्य तात्पर्यमेतत् - धर्मार्थकामार्थं त्वया सह सम्बन्धकरणं न मया स्मर्यते । त्वं याहि, अत्रैव तिष्ठ स्वेच्छानुसारं वा कर्म कुरु इति साक्षात् वदति । शकुन्तला अवमानेन लज्जया च पीडिता क्षणं यावत् किङ्कर्तव्यमूढा तिष्ठति । तदा नितरां कुपिता सा दुष्यन्तं सम्यक् निर्भत्सयन्ती- "महाराज ! जानन्नपि कुतः एवं प्रलपसि ? एवम् असत्यं कथयन् त्वं हृदि संस्थितं सर्वसाक्षिणं परमात्मानं मा अवमानय । अहं तव धर्मपत्नी । यदि मां त्यजसि न किमपि दुःखम्, परं एतं तव पुत्रं मा त्यज । मम वचनं यदि उपेक्षसे तर्हि तव शिरः सहस्रशः छिद्रं भविष्यति" इत्यादिभिः वचनैः भर्त्सयति । तथापि दुष्यन्तस्य मनः न

द्रवति । पूर्वतनं किमपि न स्मरन् सः अन्ते तामेव "वेश्यापुत्रि !" इति निन्दति । शकुन्तलायाः नयविनयादिभिः याचनादिभिः अपि दुष्यन्तः नाङ्गीकरोति । तदा सा कोपाग्निम् असहमाना पुत्रेण सह ततः निर्गता । तावता - "भरस्व पुत्रं दुष्यन्त ! मावमंस्थाः शकुन्तलाम्" (हे दुष्यन्त ! अयं तव पुत्रः, तं पोषय । शकुन्तलायाः अवमाननं मा कुरु) इति अशरीरवाणी काचित् भविष्यति, शकुन्तलायाः उपरि पुष्पवृष्टिः च भविष्यति । ततः दुष्यन्तः सिंहासनात् अवतीर्य अन्तरिक्षदेवताः नमस्कृत्य राजसभायां मन्त्रिपुरोहितं च उद्दिश्य - "अहं तु एतां जाया इति, अयं तव पुत्रः इति सम्यक् एव अभिज्ञातवान् अधुना अशरीरवाणी जाता इत्यतः अयं पुत्रः मदीयः शुद्धः इति निःशङ्कं कथयामि इति वदन् तम् आलिङ्गितवान्, शकुन्तलां च आदरेण सत्कृतवान् । सर्वदमनः युवराजपदे नियुक्तः सन् अग्रे भरतः इति प्रसिद्धिम् अवाप । शकुन्तला पट्टमहिषी सञ्जाता ।

शकुन्तलादुष्यन्तयोः कथा पुराणकाले अतीव प्रसिद्धः स्यात् । अतः इयं कथा न केवलं महाभारते, भागवते, विष्णुपुराणे, हरिवंशे, मत्स्यपुराणे, वायुपुराणे, पद्मपुराणे च दृश्यते । बौद्धानां जातककथायामपि शकुन्तलाकथासदृशी अपरा काचित् कथा विद्यते । जैनसम्प्रदायेऽपि (पार्श्वनाथचरित्रम्) कालिदासस्य शाकुन्तलनाटकसदृशी अन्य कथा दृश्यते । एतैः अंशैः शकुन्तलादुष्यन्तयोः कथा अनादिकालात् अपि प्रचलिता इति ज्ञायते ।

कालिदासस्य नाटकस्य कथायाः महाभारते उक्तायाः कथायाः च तुलनां कुर्मः चेत् अत्र कालिदासस्य रचनाकौशल्यम् उदात्तं रचनात्मकं च परिवर्तनं दृश्यते । कालिदासेन

ग्रथितस्य अभिज्ञानशाकुन्तलस्य प्रथमाङ्कः कण्वस्य अश्रमस्य दृश्यम् । तस्य आरम्भः अष्टमूर्तेः शिवस्य स्तवनेन भवति । ततः सूत्रधारः नट्या सह रङ्गं प्रविश्य ग्रीष्म-ऋतुवर्णनद्वारा सङ्गीतस्वादम् अनुभवति । नवीनतया रचितस्य कालिदासस्य नाटकस्य परिचयं कारयति । तदनन्तरं दुष्यन्तः हरिणम् अनुधावन् आगच्छन्नास्ति इति घटनां संसूच्य प्रस्तावनं समाप्य निर्गच्छति ।

अथ गच्छति किञ्चित्काले शक्रावतारतीवर्ती कश्चिद् धीवरी रत्नजटितं राजनामोत्कीर्णे बहुमूल्यसेकं स्वर्णमयमङ्‌गुलीयकं विक्रेतुमापणे गच्छन् राजपुरुषाभ्यां बद्धहस्तो नगररक्षकराजश्यालकसमीपमानीतः। अङ्‌गुलीयकागमनकारणं पृष्टः स ब्रते - स्वामिन् ! जालादिभिर्मत्स्यबन्धनोपायैः कुटुम्बभरणपोषणं करोमि । एकदा मया जाले एको रोहितो मत्स्य आसादितः । खण्डशः कल्पितस्य तस्य मत्स्यस्योदरे रत्नभास्वरमिदमङ्‌गुलीयकं मया लब्धा विक्रमापणे आगतः, आभ्यां गृहीतः आनीतश्च । तदाकण्ये नगरपालः तदङ्‌गुलीयकमादाय राजकुलं गत्वा राजशासनं प्रतीक्ष्य प्रत्यागतो रक्षिणावुवाच – मुच्यतामेष जालोपजीवी धीवरः । विदितोऽस्याङ्‌गुलीयकस्यागमवृत्तान्तः, एषोऽङ्‌गुलीयकमूल्यसम्मितः प्रसादोऽपि सन्तुष्टेन राज्ञाऽस्मै प्रदत्त, इत्युक्त्वा तस्मै धीवराय, स्वर्णकङ्कणं दत्तवान् चकार च तेन साकं कादबरो-मैत्रीम्।

अथ मेनकासहचरी सानुमती नामाप्सराः पर्यायनिवर्तनीयमप्सरस्तीर्थसान्निध्य सम्पाद्य राज्ञो दुष्यन्तस्य प्रमदवने प्रविष्टा तिरस्करिणी प्रतिच्छन्ना राज्ञः पार्श्ववर्तिनी भूत्वा तस्थौ । अङ्‌गुलीयकदर्शनेन स्मृतशकुन्तलो राजा क्वापि शान्तिं न लेभे, वसन्तोत्सवं प्रतिषिध्य माधव्याद्वितीयः शकुन्तलावृत्तान्तं भूयो भूयः स्मरन् निन्दंश्चात्मनश्चेष्टितं शकुन्तला-

चित्रलेखनादिना तद्विषयकालापैश्च कथं कथमपि निनाय दिवसान् । प्रत्यादेश-विमानितायाः शकुन्तलाया विरहेन दुःखमनुभवन्, रात्रौ जागरणात् न मया धर्मासनमध्यासितुं सम्भावितमतो यत् प्रत्यवेक्षितममात्येन तत् पत्रमारोप्यतामिति पौरकार्यपर्यवेक्षणे नियुक्तममात्यमादिशति ।

ततः समुद्रव्यापारव्यवहारी सार्थवाहो धनमित्रो नौव्यसने विपन्नः। अतोऽनपत्यस्य तस्यार्थसंचयो राजगामी भवेदित्यमात्येन लिखितं विचार्यात्मनोऽनपत्यतां स्मरन् मदवसाने पुरुवंशश्रिय एष एव विपाको भवितेति भावयन्, बहुपत्नीकस्य तस्य धनिकस्य काचिद्भार्या आपन्नासत्वा स्यात्तर्हि तद्भार्यागर्भस्थ एवं शिशुः पित्र्यं रिक्तमर्हतीत्यादिशति धर्मात्मा राजा दुष्यन्तः । इमं निखिलं वृत्तान्तं मेनकानियुक्ता सा सानुमती प्रत्यक्षीकृत्य स्वसख्यै मेनकायै प्रियमिदं निवेदयितुं कामा ततो दिवं निर्जगामः।

अत्रान्तरे केनापि अलक्षितेन सत्त्वेनाक्रान्तो माधव्योऽब्राह्मण्यमुद्घोषितवान् । ततो भूयः तस्मिन् मेघप्रच्छन्ने प्रासादे आर्तस्वरं निशम्य स्ववयस्यस्य संरक्षणाय स्वधनुषि अमोघं स्वं बाणं सन्दधे । तदा माधव्यमुन्मुच्येन्द्रसारथिर्मातलिराविर्भूय ‘हरिणा असुरास्ते शरण्ये कृताः, तेष्वेवेदं धनुः विकृष्यतां न मयि' इत्युवाच। तदनु राज्ञाभिनन्दितोऽसौ तस्मै स्वागमनकारणमाख्यत् - राजन् ! कालनेमिप्रसूतो दुर्जयो नाम दानवगणः ते सख्युरिन्द्रस्याजयो जातः । तस्य त्वं निहन्ता स्थितः । अत आत्तशस्त्रं इममिन्द्ररथमारुह्य विजयाय प्रतिष्ठिताम् । तदाकर्ण्य राजा दुष्यन्तः 'अनुगृहीतोऽस्मि अनया मघोनः संभावनया' इत्युक्त्वा माधव्यस्याक्रमणकारणं पृष्ट्वा ज्ञाततथ्यः स्वगमनवृत्तान्तममात्याय निवेदयितुमादिश्य तस्मिन् राजभारं च नियोजितवान् प्रहृष्टमना -

त्वन्मतिः केवला तावत् परिपालयतु प्रजाः ।

अधिज्यमिदमन्यस्मिन् कर्मणि व्यापृतं धनुः ॥[१३]

तदनन्तरं स वासवीयं रथमारुह्य दिवं प्रस्थितवान् ।

Unit- III अभिज्ञानशाकुन्तलम् (Act-VII)

सप्तम अङ्कः

अस्मिन्नङ्के कालनेमिप्रसुतं दर्जदानवगणं निहत्य देवकार्य-सम्पादनानन्तरं देवराजस्य सत्क्रियया संभावितो राजा दुष्यन्तो व्योमयानेनावतरद् मातलि-परिचायिता देवभूमीरवलोकयन् मध्ये मार्गे हेमकूटं किंपुरुषवर्षपर्वतं दृष्ट्वा तत्र तपश्चरतः सपत्नीकस्य मरीचिनन्दनस्य देवपितुः कश्यपस्य दर्शनलालसया तदाश्रममवतरति । तत्र प्रजापतिः कश्यपः स्वभार्यया दक्षकन्यया‌ऽऽदित्या पतिधर्ममधिकृत्य पृष्टो महर्षिपत्नीभिः सहितायै तस्यै उपदिशतीति ज्ञात्वा अशोकवृक्षमूले राजा समुपविशति, मातलिश्च राजागमनं निवेदयितुमवसरं ज्ञातुं च महर्षिसमीपे प्रस्थितः।

तत्र नरपतिः शुभसूचकचिह्नमनुभवन् तापसीभ्यां निषिध्यमानेनाबालसत्वेन बालेन संक्रीडितुं सिंहशिशुं बलादाकृष्ण जुम्भस्व सिंह ! दन्तांस्ते गणयिष्ये इति वीरोचितैः कृत्यैः औरससुतानुरागेण चाकृष्टो भवति । कस्य कृतिनो बीजमयं बाल इति विमृशन् स सिंहशावकादन्यत् क्रीडनकं ग्रहीतुं प्रसारितकरस्य तस्य बालकस्य हस्ते चक्रवर्तिलक्षणं दृष्ट्वा हृष्टः। ततो वाग्व्यापारेणायं विरमयितुमशक्य इति मत्वा एका तापसी तं प्रलोभयितुं मृत्तिकामयूरमानेतुं स्वकुटीरे जगाम । ततो द्वितीया इतस्ततोऽवलोक्य राजानमवोचत् - भद्रमुख ! मोचय नेन दुर्मोकहस्तेन बाध्यमानं बालमृगेन्द्रम् । ततस्तावत्तद्वचनमनुतिष्ठन्

बालस्पर्शसुखमुपलभ्य कामपि अपूर्वां निर्वृतिमेतः स तां तद्बालकवंशपरिचयादिकं पप्रच्छ । सा च तस्य पुरुवंशप्रभवत्वम् अप्सरसः संभवत्वं चावोचत्।

यदा च केसरिकिशोरकविमर्दात्तन्मणिबन्धात् परिभ्रष्टं रक्षाकरण्डकं दुष्यन्तो यावद् गृह्णाति, तावत्तापसी निवेदयते - एषा अपराजिता नामौषधिरस्य शिशोः जातकर्मसमये भगवता कश्यपेन बद्धा । यदि जननी जनकं बालकं वा विहायान्यः कश्चिद, भूमिपतितामेनां गृह्णाति तदा सर्पो भूत्वा तं दशतीत्यनेको दृष्टचरम् । ततः स्वपुत्र एवायमिति जातनिश्चयो बालं प्रेम्णापरिसवाजे । ततस्तापसीभ्यां तदुदन्तमुपलभ्य तत्रागतां शकुन्तलां समीक्ष्य राजा तामभिननन्द। ततो मातरमालोक्य सर्वदमनः - मातः ! क एषः पुत्र इति कथयित्वा मामालिंगति । ततः सा - आयुष्मन् स्वं भाग्यं पृच्छेत्युत्तरयति । ततः प्रणिपातादिना शकुन्तलाया विषादशल्यमुद्धरनुवाच राजा - प्रिये ! मया त्वं मोहात्स्वयमुपस्थितापि उपेक्षिता । एवं पश्चात्तापदूनहृदयो नृपोऽङ्गुलीयकोपालम्भात् स्मृतिरूपलब्धेत्युक्त्वा तस्यै तदङ्गुलीयकं दर्शयति । विषमं कृतमनेन यत्तदाऽऽर्यपुत्रस्य प्रत्ययकाले दुर्लभमासीत् । नास्य विश्वसिमि । आर्यपुत्र एवैतद् धारयतु ।

तत्र च तादृशं भूपं वीक्ष्य मातलिसौभाग्येनायुष्मान् धर्मपत्नीसमागमेन पुत्रमुखदर्शनेन च वर्द्धसे इत्युक्त्वा तं संभावयामास । ततो राजा–मातले ! वृत्तान्तेनानेनाखण्डलोऽवबोद्धव्य इति विचारे मातलिः विहस्याह - किमीश्वराणामविदितं, सर्वं जानाति स सहस्राक्षो देवराजः । ऐतु आयुष्मान् सपत्नीको मरीचिनन्दनो महर्षिः कश्यपः ते दर्शनं वितरति । अनन्तरं सकलत्रपत्रो राजा भगवन्तं कश्यपमदिति च द्रष्टुमुपस्थितः । ततो महर्षिः कश्यपोऽपि स्नेहदृष्ट्या शुभाशिषा तावनुगृह्य आयुष्मन् ! दुर्वाससः शापादियं तपस्विनी शकुन्तला त्वया

प्रत्यादिष्टा नान्यथा, वत्से ! चरितार्थासि सहधर्मचारिणं दुष्यन्तं प्रति त्वया मन्युर्न कार्य इत्याभाष्य प्रत्यादेशविषये उभावपि निवृत्तचित्तौ कृत्वा शुभाशिषा संयोजयति -

आखण्डलसमो भर्ता जयन्तप्रतिमः सुतः ।

आशीरन्या न ते योग्या पौलोमीसदृशी भव ॥[१४]

मेनकापि तत्र भर्तृपुत्रसहितां दुहितरं दृष्ट्वाऽतिमुमुदे । ततो दुष्यन्तो भगवता मारीचेन विसृष्टः पत्रकलत्राभ्यां सदिते दिव्यर्मैन्द्रं रथमारुह्य पौरैरभिनन्द्यमान स्वं नगरं प्रविवेश ।

Unit – IV- साहित्यदर्पणः

विश्वनाथेन रचितः ग्रन्थः साहित्यदर्पणम् इति । पाण्डित्यपूर्णग्रन्थोऽयम् अलङ्कार विषये वर्तते । सूत्रवृत्त्युदाहरणारुपेणा त्रिधा विभक्तः । साहित्यदर्पणे विश्वनाथस्य काव्यलक्षण:(वाक्यं रसात्मकं काव्यं) अस्ति। अत्र च विद्यमानाः कारिकाः , वृत्तयः एतेनैव रचिताः । साहित्यदर्पणकारः कविराजो विश्वनाथः उत्कलप्रदेशे ब्राह्मणकुले जन्म लेभे । तस्य प्रपितामहो नारायणः, चण्डीदासः पितामहानुजः, चन्द्रशेखरश्च पिताऽऽसीत् ।

श्री चन्द्रशेखरमहाकविचन्द्रसूनु

श्रीविश्वनाथकविराजकृतं प्रबन्धम् ।

साहित्यदर्पणममुं सुधियो विलोक्य

साहित्यतत्त्वमखिलं सुखमेव वित्त ॥ (सा. दर्पण- १०-१००)

कविराजोऽस्य पिता च कस्यापि नृपस्य सन्धि-विग्रहकपदे प्रतिष्ठितावास्ताम् । अयं वैष्णव-मतानुयायी महापात्र –कविसूक्ति-सुधाकरालङ्कारिकचक्रवर्तिप्रभृत्युपाधिर्विभूषितः प्रचुर-सम्मान प्राप्तः कविरासीत् । अयं युध्दे प्राणहरं सन्धौ च सर्वस्वहरमला वुद्दीनखिलजीनामानं पातशाहमप्यवर्णयत्-

सन्धौ सर्वस्वहरणं विग्रहे पाणनिग्रहः ।

अलावुद्दीननृपतौ न सन्धिर्न च विग्रहः॥ (सा.द. ४-१४ उदा.)

विश्वनाथः साहित्यदर्पणे जयदेवस्य गीतगोविन्दस्य प्रसन्न राघवस्य च (द्वादशशताब्द्याः ऊत्तरार्ध्दम्) श्रीहर्षस्य (११६७-७४ ई.) नैषधीयचरितस्य, रुय्यकस्य (द्वादशशताब्द्याः मध्यभागः) अलङ्कारसर्वस्वस्य श्लोकान् उअदाहरणस्वरुपं दत्तवान । अत एभ्यः परवर्ती त्रयोदशशताब्द्यां समुद्भवः विश्वनायः स्यात् इत्यनुमीयते, यतः पञ्चदशशाताब्द्यां जातस्य मल्लिनाथसूनोः, कुमारस्वामिनां 'प्रतापरुदशोभूषणम्' इत्येतस्य टीकायां विश्वनाथस्य नालोल्लेखो वर्तते । कुमारस्वामिनः समयः पञ्चदशमशताब्दी अस्ति । इत्थं कविराजस्य कालः १३०० ईसाब्दतः १३८४ ई.पर्यन्त तर्कसङ्गतः ।

अलंकारसाहित्येतिहासेन्यतमो ग्रन्थः तावत् *साहित्यदर्पणम्* एकः एवास्ति । दशपरिच्छेदात्मकोऽयं ग्रन्थः । प्रथमपंरिच्छेदे काव्यप्रयोजनं काव्यलक्षणं च । द्वितीये परिच्छेदे काव्यलक्षणं, एवममिधालक्षणव्यंजनायाः तित्रः शब्दशक्तयो वर्णिताः । तृतीये रसभाव एवं नायकनायकादिभेदाः परिगणीताः । चतुर्थे परिच्छेदे ध्वनेरेवं गुणीभूत व्यङ्ग्यस्य भेदाः । पंचमे च व्यंजनायाः स्थापना ।षष्ठे दृश्यकाव्यस्य नाटकस्य विवेचनमस्ति । सप्तमे परिच्छेदे दोषाः अष्टमे चगुणाः । नवमपरिच्छेदे रीतयः दशमे च शब्दालंकाराः, ७० अर्थालङ्काराश्च परिगणिताः ।

कविराज विश्वनाथस्य कविरुपे प्रतिभा दृश्यते । अलंकारक्षेत्रेतु एव एव ग्रन्थोऽस्य नाम्नाऽस्ति । परमेतदतिरिक्तमनेन अनेकानि काव्यानि विराचितानि साहित्यदर्पणस्तु मम्मटरुय्यककाननुसृत्यैव लिखितः । परमस्मिन्ननेके गुणा अपि सन्ति । अस्य शैली सुबोधा अस्ति । तत्र मम्मटस्य शैली समासाचिता जटिला च । अतएव विहितानेकटीकोऽयि दुरुहो

ग्रन्थोऽयम् । एवमेव पण्डितराजजगन्नाथस्य शैली अपि शास्त्रीय न्यायाशास्त्राचिता जटिला चास्ति । परं तदपेक्षया साहित्यदर्पणः सुबोधः प्रसादगुणयुक्तश्च । एकस्मिन्नेव ग्रन्थे अत्र श्रव्यदृश्यकाव्ययो र्विवेचनं विद्यते । यच्चान्यत्र दुर्लभम् । अतः कविराजस्य साहित्यदर्पणोऽलंकारेतिहासे स्वकीयं प्रभुत्वं स्थापयति ।

कविराजस्य विश्वनाथस्य रचनासु साहित्यदर्पणः सर्वाधिकः प्रख्यातो वर्त्तते । अस्य ग्रन्थस्येदं वैशिष्टयमास्ते यदस्मिन् ग्रन्थे श्रव्यदृश्ययोरुभयोरेव प्रकारयोः काव्ययोः वर्णनमास्ते । अत एव सम्पूर्णस्य काव्याशास्त्रस्य प्रतिनिधिभूतोऽयं ग्रन्थो वर्त्तते । अस्मिन् ग्रन्थे दश परिच्छेदाः सन्ति । तत्र प्रथमपरिच्छेदे काव्यलक्षणस्य, कव्यप्रयोजनस्य, काव्यभेदस्य च वर्णनमास्ते अस्मिन् परिच्छेदे काव्यप्रकाशकारस्य लक्षणस्य विस्तरेण खण्डनं कृतमास्ते । द्वितीयपरिच्छेदे वाक्यपदयोर्लक्षणानन्तरं शब्दस्याभिधालक्षणाव्यञ्जनानां विवेचनमास्ते । तृतीये परिच्छेदे रसानां, भावानाम्, नायकनायिकयोर्भेदानाञ्च विस्तरेण वर्णनं कृतमास्ते । चतुर्थपरिच्छेदे ध्वनिकाव्यस्य गुणीभूतव्यङ्ग्यकाव्यस्य च विवेचनं कृतमास्ते । पञ्चमपरिच्छेदे व्यञ्जनावृत्तेः संस्थापनाया युक्तीनां खण्डनं कृतम् । षष्ठपरिच्छेदे नाटकस्य पूर्णतया विवेचनं कृतत् । सप्तमे परिच्छेदे गुणानां निरुपणं कृतम् । नवमे परिच्छेदे चतसृणां रीतीनां वर्णनमास्ते । दशमे च परिच्छेदे शब्दार्थालङ्काराणां विशादं विवेचनं कृतं वर्त्तते ।

ग्रन्थे च काव्यलक्षणं, शब्दशक्तयः, ध्वनिः, गुणाः, दोषाः, ६२ अलङ्काराः , नायक-नायिकायोः लक्षणानि, रूपकाः, अर्थप्रकृतयः , इत्यादयः विचाराः चर्चिताः ।

एवं ध्वनिगुणीभूतव्यङ्ग्यत्वेन काव्यस्य भेदद्वयमुक्त्वा पुनर्दृश्यश्रव्यत्वेन भेदद्वयमाह--

दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम् ।

दृश्यं तत्राभिनेयं--

तस्यरूपकसंज्ञाहेतुमाह--

तद्रूपारोपात्तुरूपकम् ।। साद-६.१ ।।

तद्दृश्यं काव्यं नटे रामादिस्वरूपारोपाद्रूपकमित्युच्यते ।

को ऽसावभिनाय इत्याह--

भवेदभिनयो ऽवस्थानुकारः स चतुर्विधः ।

आङ्गिको वाचिकश्चैवमाहार्यः सात्त्विकस्तथा ।। साद-६.२ ।।

नटैरङ्गादिभी रामयुधिष्ठिरादीनामवस्थानुकरणमभिनयः ।

रुपकस्य भेदानाह--

नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारडिमाः ।

ईहामृगाङ्कवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश ।। साद-६.३ ।।

किञ्च---

नाटिका त्रोटकं गोष्ठी सट्टकं नाट्यरासकम् ।

प्रस्थानोल्लाप्यकाव्यानि प्रेङ्खणं रासकं तथा ।। साद-६.४ ।।

संलापकं श्रीगदितं शिल्पकं च विलासिका ।

दुर्मल्लिका प्रकरणी हल्लीशो भाणिकेति च ।। साद-६.५ ।।

अष्टादश प्राहुरुपरूपकाणि मनीषिणः ।

विना विशेषं सर्वेषां लक्ष्म नाटकवन्मतम् ।। साद-६.६ ।।

सर्वेषां प्रकरणादिरूपकाणां नाटिकाद्युपरूपकाणां च ।

तत्र---

नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पञ्चसंधिसमन्वितम् ।

विलासर्द्ध्यादिगुणवद्युक्तं नानाविभूतिभैः ।। साद-६.७ ।।

सुखदुःखसमुद्भूति नानारसनिरन्तरम् ।

पञ्चादिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्त्तिताः ।। साद-६.८ ।।

प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान् ।

दिव्यो ऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणावान्नायको मतः ।। साद-६.९ ।।

एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा ।

अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणो ऽद्भुतः ।। साद-६.१० ।।

चत्वारः पञ्च वा मुख्याः कार्यव्यापृतपूरुषाः ।

गोपुच्छाग्रसमाग्रं तु बन्धनं तस्य कीर्तितम् ।। साद-६.११ ।।

ख्यातं रामायणादिप्रसिद्धं वृत्तम् ।

यथा--रामचरितादि ।

सन्धयो वक्ष्यन्ते ।

नानाविभूतिभिर्युक्तमिति महासहायम् ।

सुखदुःखसमुद्भूतत्वं रामयुधिष्ठिरादिवृत्तान्तेष्वभिक्तम् ।

राजर्षयो दुष्यन्तादयः ।

दिव्याः श्रीकृष्णादयः ।

दिव्या दिव्यः, यो दिव्यो ऽप्यात्मनिनराभिमानी ।

यथा श्रीरामचन्द्रः ।

गोपुच्छग्रसमाग्रमिति "क्रमेणाङ्काः सूक्ष्माः कर्तव्याः" इति केचित् ।

अन्ये त्वाहुः--"यथा गोपुच्छे केचिद्वाला ह्रस्वाः केचिद्दीर्घास्तथेह कानिचित्कार्याणि मुखसंधो समाप्तानि कानिचित्प्रतिमुखे ।

एवमन्येष्वपि कानिचित्कानिचित्" इति ।

प्रत्यक्षनेतृचरितो रसभावसमुज्ज्वलः ।

भवेदगूढशब्दार्थः क्षुद्रचूर्णकसंयुतः ।। साद-६.१२ ।।

विच्छिन्नावान्तरैकार्थः किञ्चित्संलग्नबिन्दुकः ।

युक्तो न बहुभिः कार्यैर्बीजसंहृतिमान्न च ।। साद-६.१३ ।।

नानाविधानसंयुक्तो नातिप्रचुरपद्यवान् ।

आवश्यकानां कार्याणामविरोधाद्विनिमितः ।। साद-६.१४ ।।

नानेकदिननिर्वर्त्यकथया संप्रयोजितः ।

आसन्ननायकः पात्रैर्युतस्त्रिचतुरैस्तथा ।। साद-६.१५ ।।

दूराह्वानं वधो युद्धं राज्यदेशादिविप्लवः ।

विवाहो भोजनं शापोत्सर्गौ मृत्यू रतं तथा ।। साद-६.१६ ।।

दन्तच्छेद्यं नखच्छेद्यमन्यद्व्रीडाकरं च यत् ।

शयनाधरपानादि नगराद्यवरोधनम् ।। साद-६.१७ ।।

स्नानानुलेपने चैभिर्वर्जितो नास्तिविस्तरः ।

देवीपरिजनादीनाममात्यवणिजमपि ।। साद-६.१८ ।।

प्रत्यक्षचित्रचरितैर्युक्तो भावरसोद्भवैः ।

अन्तनिष्क्रान्तनिखिलपात्रो ऽङ्क इति कीर्त्तितः ।। साद-६.१९ ।।

बिन्द्वादयो वक्ष्यन्ते ।

आवश्यकं संध्यावन्दनाहि ।

अङ्कप्रस्तावाद्गर्भाङ्कमाह-

अङ्कोदरप्रविष्टो यो रङ्ग द्वारामुखादिमान् ।

अङ्को ऽपरः स गर्भाङ्कः सबीजः फलवानपि ।। साद-६.२० ।।

यथा बालरामायणो रावणं प्रति कोहलः--- "श्रवणैः पेयमनेकैर्द्दश्यं दीर्घैश्च लोचनैर्बहुभिः ।

भवदर्थमिव निबद्धं नाट्यं सीतास्वयंवरणम्" ।।

इत्यादिना विरचितः सीतास्वयंवरो नाम गर्भाङ्कः ।

तत्र पूर्वं पूर्वरङ्गः सभापूजा ततः परम् ।

कथनं कविसंज्ञादेर्नाटकस्याप्यथामुखम् ।। साद-६.२१ ।।

तत्रेति नाटके ।

यन्नाट्यवस्तुनः पूर्वं रङ्गविघ्नोपशान्तये ।

कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरङ्गः स उच्यते ।। साद-६.२२ ।।

प्रत्याहारादिकान्यङ्गान्यस्य भूयांसि यद्यपि ।

तथाप्यवश्यं कर्तव्या नान्दी विन्घोपशान्तये ।। साद-६.२३ ।।

तस्याः स्वरूपमाह--

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते ।

देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ।। साद-६.२४ ।।

माङ्गल्यशङ्खचन्द्राब्जकोककैरवशंसिनी ।

पदैर्युक्तादूदशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत ।। साद-६.२५ ।।

अष्टपदा यथा अनर्घराघवे--"निष्प्रत्यूहम" इत्यादि ।

द्वादशपदा यथा मम तातपादानां पुष्पमालायाम्--- शिरसि धृतसुरापगे

स्मरारावरुणमुखेन्दुरुचिर्गिरीन्द्रपुत्री ।

अथ चरणयुगानते स्वकान्ते स्मितसरसा भवतो ऽस्तु भूतिहेतुः ।।

एवमन्यत्र ।

एतन्नान्दीति कस्यचिन्मतानुसारेणोक्तम् ।

वस्तुतस्तु "पूर्वरङ्गस्य रङ्गद्वाराभिधानमङ्गम्" इत्यन्ये ।

यदुक्तम्--- "यस्मादभिनयो ह्यत्र प्राथम्यादवतार्यते ।

रङ्गद्वारमतो ज्ञेयं वागङ्गाभिनयात्मकम्" ।।

इति ।

उक्तप्रकारायाश्च नान्द्या रङ्गद्वारात्प्रथमं नटैरेव कर्तव्यतया न महर्षिणा निर्देशः कृतः ।

कालिदासादिमहाकविप्रबन्धेषु च--- वेदान्तेषु यमाहुरेकपुरुषं व्याप्य स्थितं रोदसी

यस्मिन्नीश्वर इत्यनन्यविषयः शब्दो यथार्थाक्षरः ।

अन्तर्यश्च मुमुक्षुभिनियमितप्राणादिभिर्मृग्यते स स्थाणुः स्थिरभक्तियोगसुलभो निः

श्रेयसायास्तु वः ।।

एवमादिषु नान्दीलक्षणायोगात् ।

उक्तं च---"रङ्गद्वारमारभ्य कविः कुर्यात्-ऽित्यादि ।

अत एव प्राक्तनपुस्तकेषु "नान्द्यन्ते सूत्रधारः" इत्यनन्तरमेव "वेदान्तेषु-" इत्यादि

श्लोकले(लि) खनं दृश्यते ।

यच्च पश्चात् "नान्द्यन्ते सूत्रधारः" इति ले (लि) खनं तस्यायमभिप्रायः---नान्द्यन्ते सूत्रधार इदं

प्रयोजितवान्, इतः प्रभृति मया नाटकमुपादीयत इति कवेरभिप्रायः सूचित" इति ।

पूर्वरङ्गं विधायैव सूत्रधारा निवर्तते ।

प्रविश्य स्थापकस्तद्वत्काव्यमास्थापयेत्ततः ।। साद-६.२६ ।।

दिव्यमर्त्ये स तद्रूपो मिश्रमन्यतरस्तयोः ।

सूचयैद्वस्तु बीजं वा मुखं पात्रमथापि वा ।। साद-६.२७ ।।

काव्यार्थस्य स्थापनात्स्थापकः ।

तद्वदिति सूत्रधारसदृशगुणाकारः ।

इदानीं पूर्वरङ्गस्य सम्यक्प्रयोगाभावादेक एव सूत्रधारः सर्वं प्रयोजयतीति व्यवहारः ।

स स्थापको दिव्यं वस्तु दिव्यो भूत्वा, मर्त्यं मर्त्यो भूत्वा, मिश्रं च दिव्यमर्त्ययोरन्यतरो भूत्वा सूचयेत् ।

वस्तु इतिवृत्तम्, यथोदात्तराघवे--- रामो मूर्ध्नि निधाय काननमगान्मालामिवाज्ञां गुरो-स्तद्भक्त्या भरतेन राज्यमखिलं मात्रा सहैवोज्भ्क्तितम् ।

तौ सुग्रीवविभीषणावनुगतौ नीतौ परामुन्नतिं प्रोत्सिक्ता दशकंधारप्रभृतयो ध्वस्ताः समस्ता द्विषः ।।

बीजं यथा रत्नावल्याम्--- द्वीपादन्यस्मादपि मध्यादपि जलनिधेर्दिशो ऽप्यन्तात् ।

आनीय भ्क्तटिति घटयति विधिरभिमतमभिमुखीभूतः ।।

अत्र हि समुद्रे प्रवहणभङ्गमग्नोत्थिताया रत्नावल्या अनुकूलदैवलालितो वत्सराजगृहप्रवेशो यौगन्धरायणव्यापारमारभ्य रत्नावली प्राप्तौ बीजम् ।

मुखं श्लेषादिना प्रस्तुतवृत्तान्तप्रतिपादको वाग्विशेषः ।

यथा--- आसादितप्रकटनिर्मलचन्द्रहासः प्राप्तः शरत्समय एष विशुद्धकान्तिः ।

उत्खाया गाढतमसं घनकालमुग्रं रामो दशास्यमिव संभृतबन्धुजीवः ।।

पात्रं यथा शाकुन्तले --- तवास्मि गीतरागेण हारिणा प्रसभं हृतः ।

एष राजेव दुष्यन्तः सारङ्गेणतिरंहसा ।।

रङ्गं प्रसाद्य मधुरैः शलोकैः काव्यार्थसूचकैः ।

रूपकस्य कवेराख्यां गोत्राद्यपि स कीर्तयेत् ।। साद-६.२८ ।।

ऋतुं च कञ्चित्प्रायेण भारती वृत्तिमाश्रितः ।

स स्थापकः ।

प्रायेणोति क्वचिद्दतोरकीतनमपि ।

यथा--रत्नावल्याम् ।

भारतीवृत्तिस्तु---

भारती संस्कृतप्रायो वाग्व्यापारो नटाश्रयः ।। साद-६.२९ ।।

संस्कृतबहुलो वाक्प्रधानो व्यापारो भारती ।

तस्याः प्ररोचना वीथी तथा प्रहसनामुखे ।

अङ्गान्यत्रोन्मुखीकारः प्रशंसातः प्ररोचना ।। साद-६.३० ।।

प्रस्तुताभिनयेषु प्रशंसातः श्रोतृणां प्रवृत्त्युन्मुखीकरणं प्ररोचना ।

यथा रत्नावल्याम्--- श्रीहर्षो निपुणः कविः परिषदप्येषा गुणग्राहिणी, लोके हारि च वत्साराजचरितं नाट्ये च दक्षा वयम् ।

वस्त्वेकैकमपीह वाञ्छितफलप्राप्तेः पदं किं पुनर्- मद्भाग्योपचयादयं समुदितः सर्वो गुणानां गणः ।।

वीथीप्रहसने वक्ष्येते ।

नटी विदूषको वापि पारिपाशिवक एव वा ।

सूत्रधारेण सहिताः सलापं यत्र कुर्वते ।। साद-६.३१ ।।

चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ।

आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि सा ।। साद-६.३२ ।।

सूत्रधारसदृशत्वात् स्थापको ऽपि सूत्रधार उच्यते ।

तस्यानुचरः पारिपाश्विकः, तस्मात्किञ्चिदूनो नटः ।

उद्धात्य(त)कः कथोद्धातः प्रयोगातिशयस्तथा ।

प्रवर्तकावलगिते पञ्च प्रस्तावनाभिदाः ।। साद-६.३३ ।।

तत्र---

पदानि त्वगतार्थानि तदर्थगतये नराः ।

योजयन्ति पदैरन्यैः स उद्धात्य (त) क उत्यते ।। साद-६.३४ ।।

यथा मुद्राराक्षसे सूत्रधारः--- "क्रूरग्रहः सकेतुश्चन्द्रमसम्पूर्णमण्डलमिदानीम् ।

अभिभवितुमिच्छति बालत्--" इत्यनन्तरम्---"(नेपथ्ये ।

) आः, क एष मयि जीवति चन्द्रगुप्तमभि- भवितुमिच्छति" ।

इति ।

अत्रान्यार्थन्त्यपि पदानि हृदयस्थार्थगत्या अर्थान्तरे संक्रमय्य पात्रप्रवेशः ।

सूत्रधारस्य वाक्यं वा समादायार्थमस्य वा ।

भवेत्पात्रप्रवेशश्चेत्कथोद्धातः स उच्यते ।। साद-६.३५ ।।

वाक्यं यथा रत्नावल्याम्--"द्वीपादन्यस्मादपि--ऽित्यादि (३३२ पृ द्द) सूत्रधारेण पठिते--

"(नेपथ्ये) साधु भरतपुत्र! साधु ।

एवमेतत् ।

कः सन्देहः ? द्वीपादन्यस्मादपि--" इत्यादि पठित्वा यौगन्धरायणस्य प्रवेशः ।

वाक्यार्थो यथा वेण्याम्-- निर्वाणवैरदहनाः प्रशमादरीणां नन्दन्तु पाण्डुतनयाः सह माधवेन

।

रक्तप्रसाधितभुवः क्षतविग्रहाश्च स्वस्था भवन्तु कुरुराजसुताः सभृत्याः ।।

इति सूत्रधारेण पठितस्य वाक्यस्यार्थं गृहीत्वा--"(नेपथ्ये) आः दुरात्मन् ! वृथा

मङ्गलपाठक !, कथं स्वस्था भवन्तु मयि जीवति धार्तराष्ट्राः ?" ततः सूत्रधारनिष्क्रान्तौ

भीमसेनस्य प्रवेशः ।

यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगो ऽन्यः प्रयुज्यते ।

तेन पात्रप्रवेशश्चेत्प्रयोगातिशयस्तदा ।। साद-६.३६ ।।

यथा कुन्दमालायाम्---"(नेपथ्ये) इत इतो ऽवतरत्वार्या ।

सूत्रधारः---को ऽयं खल्वार्याह्वानेन साहायकमपि मे सम्पादयति ।

(विलोक्य) कष्टमतिकरुणं वर्तते ।

"लङ्केश्वरस्य भवने सुचिरं स्थितेति रामेण लोकपरिवादभयाकुलेन ।

निर्वासितां जनपदादपि गर्भगुर्वीं सीतां वनाय परिकर्षति लक्ष्मणो ऽयम्" ।।

अत्र नृत्यप्रयोगार्थं स्वभार्याह्वानमिच्छता सूत्रधारेण "सीतां वनाय परिकर्षति लक्ष्मणो ऽयम्" इति सीतालक्ष्मणयोः प्रवेशं सूचयित्वा निष्कान्तेन स्वप्रयोगमतिशयान एव प्रयोगः प्रयोजितः ।

कालं प्रवृत्तमाश्रित्य सूत्रधृग्यत्र वर्णयेत् ।

तदाश्रयश्च पात्रस्य प्रवेशस्तत्प्रवर्तकम् ।। साद-६.३७ ।।

यथा---"आसादितप्रकट--" इत्यादि (३३२ पृ द्द) ।

"ततः प्रविशति यथानिदिष्टो रामः" ।

यत्रैकश्च समावेशात्कार्यमन्यत्प्रसाध्यते ।

प्रयोगे खलु तज्ज्ञेयं नाम्नावलगितं बुधैः ।। साद-६.३८ ।।

यथा शाकुन्तले--सूत्रधारो नटीं प्रति ।

"तवास्मि गीतरागेण-" (३३३ पृ द्द) इत्यादि ।

ततो राज्ञः प्रवेशः ।

योज्यान्यत्र यथालाभं वीथ्यङ्गानीतराण्यपि ।

अत्र आमुखे ।

उद्धात्य (त) कावलगितयोरितराणि वीथ्यङ्गानि वक्ष्यमाणानि ।

नखकुट्टस्तु---

नेपथ्योक्तं श्रुतं यत्र त्वाकाशवचनं तथा ।। साद-६.३९ ।।

समाश्रित्यापि कर्तव्यमामुखं नाटकादिषु ।

एषामामुखभेदानामेकं कञ्चित्प्रयोजयेत् ।। साद-६.४० ।।

तेनार्थमथ पात्रं वा समाक्षिप्यवै सूत्रधृक ।

प्रस्तावनान्ते निर्गच्छेत्ततो वस्तु प्रयोजयेत् ।। साद-६.४१ ।।

वस्त्वितिवृत्तम् ।

इदं पुनर्वस्तु बुधौर्द्विविधं परिकल्प्यते ।

आधिकारिकमेकं स्यात्प्रासङ्गिकमथापरम् ।। साद-६.४२ ।।

अधिकारः फले स्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः ।

तस्येतिवृत्तं कविभिराधिकारिकमुच्यते ।। साद-६.४३ ।।

फले प्रधानफले ।

यथा बालरामायणो रामचरितम् ।

अस्योपकरणार्थं तु प्रासङ्गिकमितीष्यते ।

अस्याधिकारिकेतिवृत्तस्य उपकरणनिमित्तं यच्चरितं तत्प्रासङ्गिकम् ।

यथा सुग्रीवादिचरितम् ।

पताकास्थानकं योज्यं सुविचार्येह वस्तुनि ।। साद-६.४४ ।।

इह नाट्ये ।

यत्रार्थे चिन्तिते ऽन्यस्मिंस्तल्लिङ्गो ऽन्यः प्रयुज्यते ।

आगन्तुकेन भावेन पताकास्थानकं तु तत् ।। साद-६.४५ ।।

तद्भेदानाह--सहसैवार्थसंपत्तिर्गुणावत्युपचारतः ।

पताकास्थानकमिदं प्रथमं परिकीर्तितम् ।। साद-६.४६ ।।

यथा रत्नावल्याम्--"वासवदत्तेयम्" इति राजा यदा तत्कण्ठपाशं मोचयति तदा तदुक्त्या

"सागरिकेयम्" इति प्रत्यभिज्ञाय "कथं ? प्रिया मे सागरिका ? अलमलमतिमात्रं

साहसेनामुना ते त्वरितमयि ! विमुञ्च त्वं लतापाशमेतम् ।

चलितमपि निरोद्धुं जीवितं जीवितेशे ! क्षणमिह मम कण्ठे बाहुपाशं निधेहि" ।।

अत्र फलरूपार्थसंपत्तिः पूर्वापेक्षयोपचारातिशयाद्गुणवत्युत्कृष्ट ।

वचः सातिशयं श्लिष्टं नानाबन्धसमाश्रयम् ।

पताकास्थानकमिदं द्वितीयं परिकीर्त्तितम् ।। साद-६.४७ ।।

यथा वेण्याम्--- "रक्तप्रसाधितभुवः क्षतविग्रहाश्च स्वस्था भवन्तु कुरुराजसुताः सभृत्याः" ।

अत्र रक्तादीनां रुधिरशरीरार्थहेतुकश्लेषवशेन बीजार्थप्रतिपादनान्नेतृमङ्गलप्रतिपत्तौ सत्यां द्वितायं पताकास्थानम् ।

अर्थोपक्षेपकं यत्तु लीनं सविनयं भवेत् ।

श्लिष्टप्रत्युत्तरोपेतं तृतीयमिदमुच्यते ।। साद-६.४८ ।।

लीनमव्यक्तार्थम्, श्लिष्टेन सम्बन्धयोग्येनाभिप्रायान्तरप्रयुक्तेन प्रत्युत्तरेणोतपेतम्, सविनयं विशेषनिश्चयप्राप्त्या सहितं संपाद्यते यत्तत्तृतीयं पताकास्थानम् ।

यथा वेण्यां द्वितीये ऽङ्के "कञ्चुकी-देव ! भग्नं भग्नम् ।

राजा--केन ? कञ्चुकी--भीमेन ।

राजा--कस्य ? कञ्चुकी--भवतः ।

राजा--आः ! किं प्रलपसि ? कञ्चुकी--(सभयम्) देव ! ननु ब्रवीमि ।

भग्नं भीमेन भवतः ।

राजा-धिग् वृद्धापसद ! को ऽयमद्य ते व्यामोहः ? कञ्चुकी-देव ! न व्यामोहः ।

सत्यमेव-- "भग्नं भीमेन भवतो मरुता रथकेतनम् ।

पतितिं किङ्किणीक्वाणबद्धाक्रन्दमिव क्षितौ" ।।

अत्र दुर्योधनोरुभङ्गरूपप्रस्तुतसंक्रान्तमर्थोपक्षेपणम् ।

द्व्यर्थो वचनविन्यासः सुश्लिष्टः काव्ययोजितः ।

प्रधानार्थान्तराक्षेपि पताकास्थानकं परम् ।। साद-६.४९ ।।

यथा रत्नावल्याम्--- "उद्दामोत्कलिकां विपाण्डुररुचं प्रारब्धजृम्भां क्षणा- दायासं

श्वसनोद्गमैरविरलैरातन्वतीमात्मनः ।

अद्योद्यानलतामिमां समदनां नारीमिवान्यां ध्रुवं पश्यन् कोपविपाटलद्‌युति मुखं देव्याः

करिष्याम्यहम्" ।।

अत्र भाव्यर्थः सूचितः ।

एतानि चत्वारि पताकास्थानानि क्वचिन्मङ्गलार्थं क्वचिदमङ्गलार्थं सर्वसन्धिषु भवन्ति ।

काव्यकर्तुरिच्छावशाद्भूयो भूयो ऽपि भवन्ति ।

यत्पुनः केनचिदुक्तम्--"मुखसन्धिमारभ्य सन्धिचतुष्टये क्रमेण भवन्ति" इति ।

तदन्ये न मन्यन्ते, एषामत्यन्तमुपादेयानामनियमेन सर्वत्रापि सर्वेषामपि भवितुं युक्तत्वात् ।

यत्स्यादनुचितं वस्तु नायकस्य रसस्य वा ।

विरुद्धं तत्परित्याज्यमन्यथा वा प्रकल्पयेत् ।। साद-६.५० ।।

अनुचितमितिवृत्तं यथा--रामस्यच्छद्मना बालिवधः ।

तच्चोदात्तराघवे नोनोक्तमेव ।

वीरचरिते तु वाली रामवधार्थमागतो रामेण हत इत्यन्यथा कृतः ।

अङ्केष्वदर्शनीया या वक्तव्यैव च संमता ।

या च स्याद्वर्षपर्यन्तं कथा दिनद्वयादिजा ।। साद-६.५१ ।।

अन्या च विस्तरा सूच्या सार्थोपक्षोपकैर्बुधैः ।

अङ्केषु अदर्शनीया कथा युद्धादिकथा ।

वर्षादूर्ध्वं तु यद्वस्तु तत्स्याद्वर्षादधोभवम् ।। साद-६.५२ ।।

उक्तं हि मुनिना-- "अङ्कच्छेदें कार्यं मासकृतं वर्षसञ्चितं वापि ।

तत्सर्वं कर्तव्यं वर्षादूर्ध्वं न तु कदाचित्" ।।

एवं च चतुर्दशवर्षव्यापिन्यपि रामवनवासे ये ये विराधवधादयः कथां--शास्ते ते

वर्षवर्षावयवदिनयुग्मादीनामेकतमेन सूचनीया न विरुद्धाः ।

दिनावसाने कार्यं यद्दिने नैवोपपद्यते ।

अर्थोपक्षेपकैर्वाच्यमङ्कच्छेदं विधाय तत् ।। साद-६.५३ ।।

के तेर्ऽथोपक्षेपका इत्याह--

अर्थोपपक्षेपकाः पञ्च विष्कम्भकप्रवेशकौ ।

चूलिकाङ्कावतारो ऽथ स्यादङ्कमुखमित्यपि ।। साद-६.५४ ।।

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथंशानां निदर्शकः ।

संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः ।। साद-६.५५ ।।

मध्येन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां संप्रयोजितः ।

शुद्धः स्यात्स तु संकीर्णो नीचमध्यमकल्पितः ।। साद-६.५६ ।।

तत्र शुद्धो यथा--मालतीमाधवे श्मशाने कपालकुण्डला ।

सङ्कीर्णो यथा--रामाभिन्दे क्षपणककापालिकौ ।

अथ प्रवेशकः---

प्रवेशको ऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः ।

अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा ।। साद-६.५७ ।।

अङ्कद्वयस्यान्तरिति प्रथमाङ्के ऽस्य प्रतिषेधः ।

यथा--वेण्यामश्वत्थामाङ्के राक्षसमिथुनम् ।

अथ चूलिका---

अन्तर्जवनिकासंस्थैः सूचनार्थस्य चूलिका ।

यथा वीरचरिते चतुर्थाङ्कस्यादौ--"(नेपथ्ये) भो भो वैमानिकाः, प्रवर्तन्तां रङ्गमङ्गलानि" इत्यादि ।

"रामेण परशुरामो जितः" इति नेपथ्ये पात्रैः सूचितम् ।

अथाङ्कावतारः---

अङ्कान्ते सूचितः पात्रैस्तदङ्कस्याविभागतः ।। साद-६.५८ ।।

यत्राङ्को ऽवतरत्येषो ऽङ्कावतार इति स्मृतः ।

यथा---अभिज्ञाने पञ्चमाङ्के पात्रैः सूचितः षष्ठाङ्कस्तदङ्कस्याङ्गविशेष इवावतीर्णः ।

अथाङ्कमुखम्---

यत्र सायादङ्क एवस्मिन्नङ्कानां सूचनाखिला ।। साद-६.५९ ।।

तदङ्कमुखमित्याहुर्बोजार्थख्यापकं च तत् ।

यथा---मालतीमाधवे प्रथमाङ्कादौ कामन्दक्यवलोकिते भूरिवसुप्रभृतीनां भाविभूमिकानां परिक्षिप्तकथाप्रबन्धस्य च प्रसङ्गात्संनिवेशं सूचितवत्यौ ।

अङ्कान्तपात्रैर्वाङ्कास्यं छिन्नाङ्कस्यार्थसूचनाम् ।। साद-६.६० ।।

अङ्कान्तपात्रैङ्कान्ते प्रविष्टैः पात्रैः ।

यथा वीरचरिते द्वितीयाङ्कान्ते--"(प्रविश्य) सुमन्त्रः-भगवन्तौ वशिष्ठविश्वामित्रौ भवतः सभार्गवानाह्वयतः ।

इतरे--क्क भगवन्तौ ।

सुमन्त्रः--महाराजदशरथस्यान्तिके ।

इतरे---तत्तत्रैव गच्छावः" इत्यङ्कपरिसमाप्तौ ।

"(ततः प्रविशन्त्युपविष्टा वशिष्ठविश्वामित्रपरशुरामः)ऽित्यत्र पूर्वाङ्कान्त एव प्रविष्टेन सुमान्त्रपात्रेण शतानन्दजनककथाविच्छेदे उत्तराङ्कमुखसूचनादङ्कास्यम्" इति ।

एतच्च धनिकमतानुसारेणोक्तम् ।

अन्ये तुं---"अङ्कावतरणोनैवेदं गतार्थम्" इत्याहुः ।

अपेक्षितं परित्याज्यं नीरसं वस्तु विस्तरम् ।

यदा संदर्शयेच्छेषमामुखानन्तरं तदा ।। साद-६.६१ ।।

कार्यो विष्कम्भको नाट्य आमुखाक्षिप्तपात्रकः ।

यथा--रत्नावल्यां यौगन्धरायणप्रयोजितः ।

यदा तु सरसं वस्तु मूलादेव प्रवर्तते ।। साद-६.६२ ।।

आदावेव तदाङ्केस्यादामुखाक्षेपसंश्रयः ।

यथा---शाकुन्तले ।

विष्कम्भकाद्यैरपि नो वधो वाच्यो ऽधिकारिणः ।। साद-६.६३ ।।

अन्यो ऽन्येन तिराधानं न कुर्याद्रसवस्तुनोः ।

रसः शृङ्गारादिः ।

यदुक्तं धनिकेन--- "न चातिरसतो वस्तु दूरं विच्छिन्नतां नयेत् ।

रसं वा न तिरोदध्याद्वस्त्वलङ्कारलक्षणैः" ।।

इति ।

बीजं बिन्दुः पताका च प्रकरी कार्यमेव च ।। साद-६.६४ ।।

अर्थप्रकृतयः पञ्च ज्ञात्वा योज्या यथाविधि ।

अर्थप्रकृतयः प्रयोजनसिद्धिहेतवः ।

तत्र बीजम्---

अल्पमात्रं समुद्दिष्टं बहुधा यद्विसर्पति ।। साद-६.६५ ।।

फलस्य प्रथमो हेतुर्बीजं तदभिधीयते ।

यथा---रत्नावल्यां वत्सराजस्य रत्नावलीप्राप्तिहेतुर्दैवानुकूल्यलालितो यौगन्धरायणव्यापारः ।

यथा वा---वेण्यां द्रौपदीकेशसंयमनहेतुर्भीमसेनक्रोधोपचितो युधिष्ठिरोत्साहः ।

अवान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम् ।। साद-६.६६ ।।

यथा---रत्नावल्यामनङ्गपूजापरिसमाप्तौ कथार्थविच्छेदे सति "उदयनस्येन्दोरिवोद्वीक्षते" इति सागरिका श्रुत्वा "(सहर्षम्) कधं एसो सो उदअणणरिन्दो" इत्यादिरवान्तरार्थहेतुः ।

व्यापि प्रासङ्गिकं वृत्तं पताकेत्यभिधीयते ।

यथा---रामचरिते-सुग्रीवादेः, वेण्यां भीमादेः, शाकुन्तले-विदूषकस्य चरितम् ।

पताकानायकस्य स्यान्न स्वकीयं फलान्तरम् ।। साद-६.६७ ।।

गर्भे सन्धौ विमर्शे वा निर्वाहस्तस्य जायते ।

यथा---सुग्रीवादेः राज्यप्राप्त्यादि ।

यत्तु मुनिनोक्तम्--"आ गार्भाद्वा विमर्शाद्वा पताका विनिवर्तते" ।।

इति ।

तत्र "पताकेति ।

पताका नायकफलं निर्वहणपर्यन्तमपि पताकायाः प्रवृत्तिदर्शनात्, इति व्याख्यातमभिनवगुप्तपादैः ।

प्रासङ्गिकं प्रदेशस्थं चरितं प्रकरी मता ।। साद-६.६८ ।।

यथा---कुलपत्यङ्के रावणजटायुसंवादः ।

प्रकरी नायकस्य स्यान्न स्वकीयं फलान्तरम् ।

यथा---जटायोः मोक्षप्राप्तिः ।

अपेक्षितं तु यत्साध्यमारम्भो यन्निबन्धनः ।। साद-६.६९ ।।

समापनं तु यत्सिद्ध्यै तत्कार्यमिति संमतम् ।

यथा---रामचरिते रावणवधः ।

अवस्थाः पञ्च कार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः ।। साद-६.७० ।।

आरम्भयत्नप्राप्त्याशानियताप्तिफलागमाः ।

तत्र---

भवेदारम्भ औत्सुक्यं यन्मुख्यफलसिद्धये ।। साद-६.७१ ।।

यथा---रत्नावल्यां रत्नावल्यन्तः पुरनिवेशार्थं यौगन्धरायणस्यौत्सुक्यम् ।

एवं नायकनायिकादीनामप्यौत्सुक्यमाकरेषु बोद्धव्यम् ।

प्रयत्नस्तु फलाबाप्तौ व्यापारो ऽतित्वरान्वितः ।

यथा रत्नावल्याम्---"तहवि ण अत्थि अण्यो दंसण उवाओ त्ति जधा तधा आलिहिअ जधासमीहिदं करैस्सम्" ।

इत्यादिना प्रतिपादितो रत्नावल्याश्चित्रलेखनादिर्वत्सराजसङ्गमोपायः ।

यथा च---रामचरिते समुद्रबन्धनादिः ।

उपायापायशङ्काभ्यां प्राप्त्याशा प्राप्तिसम्भवः ।। साद-६.७२ ।।

यथा---रत्नावल्यां तृतीये ऽङ्के वेषपरिवर्तनाभिसरणादेः

सङ्गमोपायाद्वासवदत्तालक्षणापायशङ्कया चानिर्धारितैकान्तसङ्गमरूपफलप्राप्तिः प्राप्त्यशा ।

एवमन्यत्र ।

अपायाभावतः प्राप्तिनियताप्तिस्तु निश्चिता ।

अपायाभावान्निर्धारितैकान्तफलप्राप्तिः ।

यथा रत्नावल्याम्--"राजा--देवीप्रसादनं त्यक्त्वा नान्यमत्रोपायं पश्यामि" ।

इति देवीलक्षणापायस्य प्रसादनेन निवारणान्नियतफलप्राप्तिः सूचिता ।

सावस्था फलयोगः स्याद्यः समग्रफलोदयः ।। साद-६.७३ ।।

यथा---रत्नावल्यां रत्नावलीलाभश्चक्रवर्तित्वलक्षणफलान्तरलाभसहितः ।

एवमन्यत्र ।

यथासंख्यमवस्थाभिराभिर्योगात्तु पञ्चभिः ।

पञ्चधैवेतिवृत्तस्य भागाः स्युः पञ्चसन्धयः ।। साद-६.७४ ।।

तल्लक्षणमाह---

अन्तरैकार्थसम्बन्धः सन्धिरेकान्वये सति ।

एकेन प्रयोजनेनान्वितानां कथांशानामवान्तरैकप्रयोजनसम्बन्धः सन्धिः ।

तद्भेदानाह--

मुखं प्रतिमुखं गर्भो विमर्श उपसंहृतिः ।। साद-६.७५ ।।

इति पञ्चास्य भेदाः स्युः क्रमाल्लक्षणमुच्यते ।

यथाद्देशं लक्षणमाह---

यत्र बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससम्भवा ।। साद-६.७६ ।।

प्रारम्भेण समायुक्ता तन्मुखं परिकीर्त्तितम् ।

यथा--रत्नावल्यां प्रथमे ऽङ्के ।

फलप्रधानोपायस्य मुखसन्धिनिवेशिनः ।। साद-६.७७ ।।

लक्ष्यालक्ष्य इवोद्भेदो यत्र प्रतिमुखं च तत् ।

यथा---रत्नावल्यां द्वितीये ऽङ्के वत्सराजसागरिकासमागमहेतोरनुरागबीजस्य प्रथमाङ्कोपक्षिप्तस्य सुसंगता--विदूषकाभ्यां ज्ञायमानतया किंचिल्लक्ष्यस्य वासवदत्तया चित्र फलकवृत्तान्तेन किञ्चिदुन्नीयमानस्योद्देशरूप उद्भेदः ।

फलप्रधानोपायस्य प्रागुद्भिन्नस्य किञ्चिन ।। साद-६.७८ ।।

गर्भो यत्र समुद्भेदो ह्रासान्वेषणवान्मुहुः ।

फलस्य गर्भीकरणाद्गर्भः ।

यथा रत्नावल्यां द्वितीये ऽङ्के---"सुसंगता---सहि, अदक्खिणा दाणि सि तुमं जा एवं भट्टिणा हत्थेण गाहिदा वि कोवं ण मुञ्चसि" इत्यादौ समुद्भेदः ।

पुनर्वासवदत्ताप्रवेशे ह्रासः ।

तृतीये ऽङ्के---"तद्वार्तान्वेषणाय गतः कथं चिरयति वसन्तकः" इत्यन्वेषणम् ।

विदूषकः--ही ही भोः, कोसम्बीरज्जलम्भेणावि ण तादिसो पिअवअस्सस्स परितोसो जादिसो मम सआसादो पियवअणं सुणिअ भवस्सदि" इत्यादावुद्भेदः ।

पुनरपि वासवदत्ताप्रत्यभिज्ञानाद् ह्रासः ।

सागरिकायाः सङ्केतस्थानगमने ऽन्वेषणम् ।

पुनर्लतापाशकरणो उद्भेदः ।

अथ विमिर्शः---

यत्र मुख्यफलोपाय उद्भिन्नो गर्भतो ऽधिकः ।। साद-६.७९ ।।

शापाद्यैः सान्तरायश्च स विमर्श इति स्मृतः ।

यथा शाकुन्तले चतुर्थाङ्कादौ---अनसूया---पिअंवदे, जैवि गन्धव्वेण विवाहेण णिब्बुत्तकल्लाणा पिअसही सौन्तला अणुरूवभत्तुभाइणी संवुत्तेति निव्वुदं मे हिअअम्, तह वि एत्तिअं चिन्तणिज्जम्" इत्यत आरभ्य सप्तमाङ्कोपक्षिप्ताच्छकुन्तलाप्रत्यभिज्ञानात्प्रागर्थसञ्चयः शकुन्तलाविस्मरणरूपविन्घालिङ्गितः ।

अथ निर्वहणम्---

बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम् ।। साद-६.८० ।।

एकार्थमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणां हि तत् ।

यथा--वेण्याम्--"कञ्चुका--(उपसृत्य, सहर्षम्-) महाराज !वर्धसे ।

अयं खलु भीमसेनो दुर्योधनक्षतजारुणीकृतसर्वशरीरो दुर्लक्ष्यव्यक्तिः" इत्यादिना

द्रौपदीकेशसंयमनादिमुखसन्ध्यादिबीजानां निजनिजस्थानोपक्षिप्तानामेकार्थयोजनम् ।

यथा वा-शाकुन्तले सप्तमाङ्के ऽशकुन्तलाभिज्ञानादुत्तरोर्ऽथराशिः ।

एषामङ्गान्याह--

उपक्षेपः परिकरः परिन्यासो विलोभनम् ।। साद-६.८१ ।।

युक्तिः प्राप्तिः समाधानं विधानं परिभावना ।

उद्भेदः करणं भेद एतान्यङ्गानि वै मुखे ।। साद-६.८२ ।।

यथोद्देशं लक्षणमाह--

काव्यार्थस्य समुत्पत्तिरुपक्षेप इति स्मृतः ।

काव्यार्थ इतिवृत्तलक्षणप्रस्तुताभिधेयः ।

यथा वेण्याम्--"भीमः--- लाभागृहानलविषान्नसभाप्रवेशैः प्राणेषु वित्तनिचयेषु च नः प्रहृत्य ।

आकृष्य पाण्डववधूपरिधानकेशान् स्वस्था भवन्ति मयि जीवति धर्तराष्ट्राः ।।

समुत्पन्नार्थबाहुल्यं ज्ञेयः परिकरः पुनः ।। साद-६.८३ ।।

यथा तत्रैव--- प्रवृद्धं यद्वैरं मम खलु शिसोरेव कुरुभिर्- न तत्रार्यो हेतुर्न भवति किरीटी न च युवाम् ।

जरासंधस्योरः स्थलमिव विरूढं पुनरपि क्रुधा भीमः सन्धिं विघटयति यूयं घटयत ।।

तन्निष्पत्तिः परिन्यासः---

यथा तत्रैव--- चञ्चद्रभुजभ्रमितचण्डगदाभिघातसंचूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य ।

स्त्यानावनद्धघनशोणितशोणपाणिरुत्तंसयिष्यति कचांस्तव देवि ! भीमः ।।

अत्रोपक्षेपो नामेतिवत्तलक्षणस्य काव्याभिधैयस्य संक्षेपेणोपक्षेपणमात्रम् ।

परिकरस्तस्यैव बहुलीकरणम् ।

परिन्यासस्ततो ऽपि नश्चयापत्तिरूपतया परितो हृदये न्यसनम्, इत्येषां भेदः ।

एतानि चाङ्गानि उक्तेनैव पौर्वापर्येण भवन्ति, अङ्गान्तराणि त्वन्यथापि ।

---गुणाख्यानं विलोभनम् ।

यथा तत्रैव---"द्रौपदी--णाध, किं दुक्करं तुए परिकुविदेण" ।

यथा वा मम चन्द्रकलायां चन्द्रकलावर्णने--सेयम्, "तारुण्यस्यविलासः---" इत्यादि (१३९ पृ.) ।

यत्तु शकुन्तलादिषु "ग्रीवाभङ्गाभिरामम्---" इत्यादि मृगादिगुणवर्णनं

तद्बीजार्थसम्बन्धाभावान्न संध्यङ्गम् ।

एवमङ्गान्तराणामप्यूह्यम् ।

संप्रधारणमर्थानां युक्तिः---

यथा--वेण्यां सहादेवो भीमं प्रति आर्य ! किं महाराजसंदेशो ऽयमव्युत्पन्न एवार्येण गृहीतः"

इत्यतः प्रभृति यावद्भीमवचनम् ।

"युष्मान् ह्रेपयति क्रोधाल्लोके शत्रुकुलक्षयः ।

न लज्जयति दारणां सभायां केशकर्षणम्" ।।

इति ।

प्राप्तिः सुखागमः ।। साद-६.८४ ।।

यथा तत्रैव---"मथ्नामि कौरवशतं समरे न कोपात्---" इत्यादि (२८४ पृ.) "द्रौपदी--(श्रुत्वा सहर्षम्--) णाध, अस्सुदपुव्वं क्खु एदं वअणम्, ता पुणो पुणो भण" ।

बीजस्यागमनं यत्तु तत्समाधानमुच्यते ।

यथा तत्रैव--"(नेपथ्ये कलकलानन्तरम्) भो भो द्रुपदविराटवृष्ण्यन्धक सहदेवप्रभृतयः ! अस्मदक्षौहिणीपतयः कौरवचमूप्रधानयोधाश्च शृण्वन्तु भवन्तः--- यत्सत्यव्रतभङ्गभीरुमनसा यत्नेन मन्दीकृतं यद्विस्मर्तुमपीहितं शमवता शान्ति कुलस्येच्छता । तद्द्यूतारणिसंभृतं नृपसुताकेशाम्बराकर्षणैः क्रोधज्योतिरिदं महत्कुरुवने यौधिष्ठिरं जृम्भते" ।।

अत्र "स्वस्था भवन्तु मयि जीवति--" इत्यादि बीजस्य प्रधाननायकाभिमतत्वेन सम्यगहितत्वात्समाधानम् ।

सुखदुः खकृतो योऽर्थस्तद्विधानमिति स्मृतम् ।। साद-६.८५ ।।

यथा बालचरिते--- "उत्साहातिशयं वत्स ! तव बाल्यं च पश्यतः ।

मम हर्षविषादाभ्यामाक्रान्तं युगपन्मनः" ।

यथा वा मम प्रभावत्याम्--"नयनयुगासेचनकम्-" इत्यादि (२३६ पृ.) ।

कुतूहलोत्तरा वाचः प्रोक्ता तु परिभावना ।

यथा--वेण्यां द्रौपदी युद्धं स्यान्न वेति संशयाना तूर्यशब्दानन्तरम् "णाध ! किं दाणिं एसो पलअजलहरत्थणिदमन्थ खणे खणे समरदुन्दुभि ताडीअदि" ।

बीजार्थस्य प्ररोहः स्यादुद्भेदः---

यथा तत्रैव--"द्रौपदी--अण्णां च णाह, पुणोवि तुम्हेहि समरादो आअच्छिअ समास्सासैदव्वा ।

भीमः--ननु पाञ्चालराजतनये ! किमद्यालीकाश्वासनया-- भूयः

परिभवक्लान्तिलज्जाविधुरिताननम् ।

अनिः शेषितकौरव्यं न पश्यसि वृकोदरम् ।।

---करणं पुनः ।। साद-६.८६ ।।

प्रकृतार्थसमारम्भः--

यथा तत्रैव---"देवि ! गच्छामो वयमिदानीं कुरुकुलक्षयाय" इति ।

---भेदः संहतभेदनम् ।

यथा तत्रैव---"अत एवाद्यप्रभृति भिन्नो ऽहं भवद्भ्यः" ।

केचित्तु---"भेदः प्रोत्साहना" इति वदन्ति ।

अथ प्रतिमुखाङ्गानि---

विलासः परिसर्पश्च विधुतं तापनं तथा ।। साद-६.८७ ।।

नर्म नर्मद्युतिश्चैव तथा प्रगमनं पुनः ।

विरोधश्च प्रतिमुखे तथा स्यात्पर्युपासनम् ।। साद-६.८८ ।।

पुष्पं वज्रमुपन्यासो वर्णसंहार इत्यपि ।

तत्र---

समीहा रतिभोगार्था विलास इति कथ्यते ।। साद-६.८९ ।।

रतिलक्षणस्य भावस्य यो हेतुभूतो भोगो विषयः प्रमदा पुरुषो वा तदर्था समीहा विलासः ।

यथा शाकुन्तले--- कमं प्रिया न सुलभा मनस्तु तद्भावदर्शनायासि ।

अकृतार्थे ऽपि मनसिजे रतिमुभयप्रार्थना कुरुते ।।

इष्टनष्टानुसरणं परिसर्पश्च कथ्यते ।

यथा शाकुन्तले---"राजा---भवितव्यमत्र तया ।

तथा हि--- अभ्युन्नता पुरस्तादवगाढा जघनगौरवात्पश्चात् ।

द्वारे ऽस्य पाण्डुसिकते पदपङ्क्तिर्दृश्यते ऽभिनवा" ।।

कृतस्यानुनयस्यादौ विधुतं त्वपरिग्रहः ।। साद-६.९० ।।

यथा तत्रैव---"अलं वो अन्तेउरविरहपज्जुस्सुएण राएसिणा उवरुद्धेण" ।

केचित्तु---"विधृतं स्यादरतिः" इति वदन्ति ।

उपायादर्शनं यत्तु तापनं नाम तद्भवेत् ।

यथा रत्नावल्याम्---"सगरिका--- दुल्लहजणाणुराओ लज्जा गुरुई परअसो अप्पा ।

पियसहि विसमं पेम्मं मरणं सरणं णवरि एक्कम्" ।।

परिहासवचो नर्म---

यथा रत्नावल्याम्---"सुसंगता--सही ! जस्स किदे तुमं आअदा से अअं दे पुरदो चिट्ठदि ।

सागरिका---(साभ्यसूयम्) कस्स किदे अहं आअदा ? "सुसंगता--अलं अण्णसंकिदेण ।

णं चित्तफलअस्स" ।

---धृतिस्तु परिहासजा ।। साद-६.९१ ।।

नर्मद्युतिः---

तथा तत्रैव--"सुसंगता-सहि ! अदक्खिणा दाणिं सि तुमं जा एव्वं भट्टिणा हत्थावलम्बिदावि

कोवं ण मुञ्चसि ।

सागरिका--(सभ्रूभङ्गमीषद्विहस्य) सुसंगदे ! दाणिं वि कीलिदुं न विरमसि ।

केचित्तु--"दोषस्याच्छादनं हास्यं नर्मद्युतिः" इति वदन्ति ।

---प्रगमनं वाक्यं स्यादुत्तरोत्तरम् ।

यथा विक्रमोर्वश्याम्--उर्वशी--जअदु जअदु महाराओ ।

राजा--- मया नाम जितं यस्य त्वया जय उदीर्यते" ।

इत्यादि ।

विरोधो व्यसनप्राप्तिः---

यथा चण्डकौशिके---"राजा---नूनमसमीक्ष्यकारिणा मया अन्धेनेव स्फुरच्छिखाकलापो ज्वलनः पद्भ्यां समाक्रान्तः" ।

---क्रुद्धस्यानुनयः पुनः ।। साद-६.९२ ।।

स्यात्पर्युपासनं--

यथा रत्नावल्याम्--"विदूषकः---भो, मा कुप्य ।

एषा हि कदलीघरन्तरं गादा" इत्यादि ।

---पुष्पं विशेषवचनं मतम् ।

यथा तत्रैव---"(राजा हस्ते गृहीत्वा स्पर्शं नाटयति) विदूषकाः---भो वअस्स ! एसा अपुव्वा सिरी तए समासादिदा ।

राजा---वयस्य ! सत्यम्--- श्रीरेषा, पाणिरप्यस्याः पारिजातस्य पल्लवः ।

कुतो ऽन्यथा स्त्रवत्येष स्वेदच्छद्मामृतद्रवः ।।

प्रत्यक्षनिष्ठुरं वज्रम्---

यथा तत्रैव---"राजा---कथमिहस्थो ऽहं त्वया ज्ञातः ? सुसंगता---ण केवलं तुमं समं चित्तफलएण ।

ता जाव गदुअ गदुअ देवीए णिवेदैस्सम्" ।

---उपन्यासः प्रसादनम् ।। साद-६.९३ ।।

यथा तत्रैव--"सुसंगता--भट्टुण ! अलं सङ्काए ।

मए वि भटिणीए पसादेण कीलिदं ज्जेव एदिहिं ।

ता किं कण्णाभरणोण ।

अदो वि मे गरुअरो पसादो एसो, जं तुए अहं एत्थ आलिहिदत्ति कुविदा मे पिअसही

साअरिआ ।

एसा ज्जेव पसादीअदु" ।

केचित्तु---"उपपत्तिकृतो ह्यर्थ उपन्यासः स कीर्तितः" ।

इति वदन्ति ।

उदाहरन्ति च, तत्रैव---"अदिमुहरा क्खु सा गब्भदासी" इति ।

चातुर्वर्ण्योपगमनं वर्णसंहार इष्यते ।

यथा महावीरचरिते तृतीये ऽङ्के--- परिषदियमृषीणामेष वीरो युधाजित् सह

नृपतिरमात्यैर्लोमपादश्च वृद्धः ।

अयमविरतयज्ञो ब्रह्मवादी पुराणः प्रभुरपि जनकानामङ्ग भो याचकास्ते ।।

इत्यत्र ऋषिक्षादीनां वर्णानां मेलनम् ।

अभिनवगुप्तपादास्तु--"वर्णशब्देन पात्राण्युपलक्ष्यन्ते ।

संहारो मेलनम्" इति व्याचक्षते ।

उदाहरन्ति च रत्नावल्यां द्वितीये ऽङ्के--"अदो वि मे अत्तं गुरुअरो पसादो--" इत्यादेरारभ्य

"णं हत्थे गेण्हिअ पसादेहि णम् ।

राजा--क्वासौ क्वासौ" इत्यादि ।

अथ गार्भाङ्गानि---

अभूताहरणं मार्गो रूपोदाहरणो क्रमः ।। साद-६.९४ ।।

संग्रहश्चानुमानं च प्रार्थना क्षिप्तिरेव च ।

त्रो (तो) टकाधिबलोद्वेगा गर्भे स्युर्विद्रवस्तथा ।। साद-६.९५ ।।

तत्र व्याजाश्रयं वाक्यमभूताहरणं मतम् ।

यथा अश्वत्थामाङ्के--- अश्वत्थामा हत इति पृथासूनुना स्पष्टमुक्त्वा स्वैरं शेषे गज इति पुनर्व्याहृतं सत्यवाचा ।

तच्छ्रुत्वासौ दयिततनयः प्रत्ययात्तस्य राज्ञः शस्त्राण्याजौ नयनसलिलं चापि तुल्यं मुमोच ।।

तत्त्वार्थकथनं मार्गः---

यथा चण्डकौशिके--"राजा---भगवन् ! गृह्यतामर्जितमिदं भार्यातनयविक्रयात् ।

शेषस्यार्थे करिष्यापि चण्डाले ऽप्यात्मविक्रयम् ।।

रूपं वाक्यं वितर्कवत् ।। साद-६.९६ ।।

यथा रत्नावल्याम्--"राजा--- मनः प्रकृत्यैव चलं दुर्लक्ष्यं च तथापि मे ।

कामेनैतत्कथं विद्धं समं सर्वैः शिलीमुखैः ।।

उदाहरणमुत्कर्षयुक्तं वचनमुच्यते ।

यथा अश्वत्थामाङ्के-- यो यः शस्त्रं बिभर्ति स्वभुजगुरुमदः पाण्डवीनां चमूनां यो यः पाञ्चालगोत्रे शिशुरधिकवया गर्भशय्यां गतो वा ।

यो यस्तत्कर्मसाक्षी, चरति मयि रणो यश्च यश्च प्रतीपः क्रोधान्धस्तस्य तस्य स्वयमिह जगतामन्तकस्यान्तको ऽहम् ।।

भावतत्त्वोपलब्धिस्तु क्रमः स्यात्---

यथा शासुन्तले---"राजा---स्थाने खलु विस्मृतनिमेषेण चक्षुषा प्रियामवलोकयामि ।

तथाहि-- उन्नमितैकभ्रूलतमाननमस्याः पदानि रचयन्त्याः ।

पुलकाञ्चितेन कथयति मय्यनुरागं कपोलेन ।।

---संग्रहः पुनः ।। साद-६.९७ ।।

सामदानार्थसंपन्नः--

यथा रत्नावल्याम्---"राजा---साधु वयस्य ! इदं ते पारितोषिकम् ।

(इति कटकं ददाति) ।

---लिङ्गादूहो ऽनुमानता ।

यथा जानकीराघवे नाटके---"रामः--- लीलागतैरपि तरङ्गयतो धरित्रीमालोकनैर्नमयतो जगतां शिरांसि ।

तस्यानुमापयति काञ्चनकान्तिगौरकायस्य सूर्यतनयत्वमधृष्यतां च ।।

रतिहर्षोत्सवानां तु प्रार्थनं प्रार्थना भवेत् ।। साद-६.९८ ।।

यथा रत्नाषल्याम्---"प्रिये सागरिके ! शीतांशुर्मुखमुत्पले तव दृशौ, पद्मानुकारौ करौ, रम्भास्तम्भनिभं तथोरुयुगलं, बाहू मृणालोपमौ ।

इत्यह्लादकराखिलङ्गि ! रभसान्निः शङ्कमालिङ्ग्य मा- मङ्गनि त्वमनङ्गतापविधुराण्येह्येहि निर्वापय ।।

इदं च प्रार्थनाख्यमङ्गम् ।

यन्मते निर्वहणो भूतावसरत्वात्प्रशस्तिनामाङ्ग नास्ति तन्मतानुसारेणोक्तम्, अन्यथा पञ्चषष्टिसंख्यत्वप्रसङ्गात् ।

रहस्यार्थस्य तद्भेदः क्षिप्तिः स्यात्---

यथाश्वत्थामाङ्के--- एवस्यैव विपाको ऽयं दारुणो भुवि वर्तते ।

केशग्रहे द्वितीये ऽस्मिन्नूनं निः शेषिताः प्रजाः ।।

---त्रो(तो) टकं पुनः ।

संरब्धवाक्--

यथा चण्डकौशिके---"कौशिकः--आः, पुनः कथमद्यापि न सम्भूता स्वणादक्षिणाः" ।

---अधिबलभिसंमधिच्छलेन यः ।। साद-६.९९ ।।

यथा रत्नावल्याम्---"काञ्चनमाला---भट्टिणि, इयं सा चित्तसालिआ ।

वसन्तअस्स सण्णं करोमि " इत्यादि ।

नृपादिजनिता भीतरुद्वेगः परिकीर्तितः ।

यथा वेण्याम्--- प्राप्तावेकरथारूढौ पृच्छन्तौ त्वामितस्ततः ।

स कर्णारिः स च क्रूरो वृककर्मा वृकोदरः ।।

शङ्काभयत्रासकृतः सम्भ्रमो विद्रवो मतः ।। साद-६.१०० ।।

कालान्तककरालास्यं क्रोधोद्भूतं दशाननम् ।

विलोक्य वानरानीके सम्भ्रमः को ऽप्यजायत ।।

अथ विमर्शाङ्गानि---

अपवादो ऽथ संफेटो व्यवसायो द्रवो द्युतिः ।

शक्तिः प्रसङ्गः शेदश्च प्रतिषेधो विरोधनम् ।। साद-६.१०१ ।।

प्ररोचना विमर्शे स्यादादानं छादनं तथा ।

दोषप्रख्यापवादः स्यात्---

यथा वेण्याम्---"युधिष्ठिरः---पञ्चालक ! क्वचिदासादिता तस्य दुरात्मनः कौरव्यापसदस्य पदवी ।

पाञ्चालकः--न केवलं पदवी, स एव दुरात्मा देवीकेशपाशस्पर्शपातकप्रधानहेतुरुपलब्धः" ।

---संफेटो रोषभाषणम् ।। साद-६.१०२ ।।

यथा तत्रैव---"राजा---अरे रे मरुत्तनय ! वृद्धस्य राज्ञः पुरतो निन्दितमप्यात्मकर्म शलाघसे ।

शृणु रे-- कृष्टा केशेषु भार्या तव तव च पशोस्तस्य राज्ञस्तयोर्वा प्रत्यक्षं भूपतीनां मम भुवनपतेराज्ञया द्यूतदासी ।

तस्मिन् वेरानुबन्धे वद किमपकृतं तैर्हता ये नरेन्द्रा बाह्वोर्वीर्यातिभारद्रविणगुरुमदं मामजित्वैव दर्पः ।।

भीमः---(सक्रोधम्) आः पाप ।

राजा---आः पाप" ।

इत्यादि ।

व्यवसायश्च विज्ञेयःत प्रतिज्ञाहेतुसंभवः ।

यथा तत्रैव---"भीमः--- निहताशेषकौरव्यः क्षीबो दुःशासनासृजा ।

भङ्क्ता दुर्योधनस्यौर्वोर्भोमो ऽयं शिरसा नतः ।।

द्रवो गुरुव्यतिक्रान्तिः शोकावेगादिसम्भवा ।। साद-६.१०३ ।।

यथा तत्रैव---"युधिष्ठिरः---भगवन् ! कृष्णाग्रज ! सुभद्राभ्रातः ! ज्ञातिप्रीतिर्मनसि न कृता, क्षत्रियाणां न धर्मो रूढं सख्यं तदपि गणितं नानुजस्यार्जुनेन ।

तुल्यः कामं भवतु भवतः शिष्ययोः स्नेहबन्धः को ऽयं पन्था यदसि विमुखो मन्दभाग्ये मयि त्वम् ।

तर्जनोद्वेजने प्रोक्ता द्युतिः---

यथा तत्रैव दुर्योधनं प्रति कुमारवृकोदरेणोक्तम्---- जन्मेन्दोविमले कुले व्यपदिशस्यद्यापि धत्से गदां मां दुः शासनकोष्णशोणितमधुक्षीबं रिपुं मन्यसे ।

दर्पान्धो मधुकैटभद्विषि हरावप्युद्धतं चेष्टसे त्रासान्मे नृ-पशो ! विहाय समरं पङ्के ऽधुना लीयसे ।।

---शक्तिः पुनर्भवेत् ।

विरोधस्य प्रशमनम्---

यथा तत्रैव--- "कुर्वन्त्वाप्ता हतानां रणशिरसि जना भस्मसाद् देहभारा- नश्रून्मिश्रं कथञ्चिद्ददतु जलममी बान्धवा बान्धवेभ्यः ।
मार्गन्तां ज्ञातिदेहान् हतनरगहने खण्डितान् गृध्रकङ्कैः- रस्तं भास्वान् प्रयातः सह रिपुभिरयं संह्रिन्तां बलानि ।।

---प्रसङ्गो गुरुकीर्त्तनम् ।। साद-६.१०४ ।।

यथा मृच्छकटिकायाम्---"चाण्डालकः---एसो क्खु सागलदत्तस्स सुदो अज्जविस्मदत्तस्म णत्तिओ चालुदत्तो वावादिदुं वञ्भ्क्तट्ठाणं णिज्जै एदेण किल गणिआ वसन्तसेणा सुअण्णलोहेण वावादि देत्ति ।
चारुदत्तः---(सनिर्वेदं स्वगतम्) "मखशतपरिपूतं गोत्रमुद्भासितं यत्, सदसि निविडचेत्यब्रह्मघोषैः पुरुस्तात् ।
मम निधनदशायां वर्त्तमानस्य पापैस्तदसद्दशमनुष्यैर्घुष्यते घोषणायाम्" ।।

इत्यनेन चारुदत्तवधाभ्युदयानुकूलप्रसङ्गाद् गुरुकीर्त्तनमिति प्रसङ्गः ।

मनश्चेष्टासमुत्पन्नः श्रमः खेद इति स्मृतः ।

मनः समुत्पन्नो यथा मालतीमाधवे--- दलति हृदयं गाढोद्वेगो द्विधा न भिद्यते वहति विकलः कायो मोहं न मुञ्चति चेतनाम् ।
ज्वलयति तनूमन्तर्दाहः, करोति न भस्मसात् प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी, न कृन्तति जीवितम्

।।

एवं चेष्टासमुत्पन्नो ऽपि ।

ईप्सितार्थप्रतीघातः प्रतिषेध इतीष्यते ।। साद-६.१०५ ।।

यथा मम प्रभावत्यां विदूषकं प्रति प्रद्युम्नः---सखे ! कथमिह त्वमेकाकी वर्त्तसे ? क्व नु पुनः प्रियसखीजनानुगम्यमाना प्रियतमा मे प्रभावती ? विदूषकः- असुर वैणा आआरिअ कहिं वि णीदा ।

प्रद्युम्नः---(दीर्घं निश्वस्य) हा पूर्णचन्द्रमुखि ! मत्तचकोरनेत्रे ! मामानताङ्गि ! परिहाय कुतो गतासि ?" ।

गच्छ त्वमद्य ननु जीवित ! तूर्णमेव दैवं कदर्थनपरं कृतकृत्यमस्तु ।।

कार्यात्ययोपगमनं विहोधनमिति स्मृतम् ।

यथा वेण्याम्---युधिष्ठिरः--- तीर्णे भीष्ममहोदधौ कथमपि द्रोणानले निवृते

कर्णाशीविषभोगिनि प्रशमिते शल्ये च याते दिवम् ।

भीमेन प्रियसाहसेन रभासादल्पावशेषे जये सर्व जीवितसंशयं वयममी वाचा समारोपिताः ।।

प्ररोचना तु विज्ञेया संहारार्थप्रदर्शिनी ।। साद-६.१०६ ।।

यथा वेण्याम्---"पाञ्चालकः--अहं देवेन चक्रपाणिना सहितः---" इत्युपक्रम्य कृतं सन्देहेन ।

पूर्यन्तां सलिलेन रत्नकलशा राज्याभिषेकाय ते कृष्णात्यन्तचिरोज्भ्क्तिते तु कबरीबन्धे

करोतु क्षणम् ।

रामे शातकुठारभास्वरकरे क्षत्रद्रुमोच्छेदिनि क्रमधान्धे च वृकोदरे परिपतत्याजौ कुतः संशयः" ।।

कार्यसंग्रह आदानम्---

यथा वेण्याम्---"भो भोः समन्तपञ्चकचारिणः ! ।

नाहं रक्षो न भूतो रिपुरुधिरजलाह्लादिताङ्गः प्रकामं निस्तीर्णोरुप्रतिज्ञाजलनिधिगहनः क्रोधनः क्षत्रियो ऽस्मि ।

भो भो राजन्यवीराः ! समरशिखिशिखाभुक्तशेषाः ! कृतं व-- स्त्रासेनानेन लीनैर्हतकरितुरगान्तहितैरास्यते यत् ।।

अत्र समस्तरिपुवधकार्यस्य संकृहीतत्वादादानम् ---

तदाहुश्छादनं पुनः ।

कार्यार्थमपमानादेः सहनं खलु यद्भवेत् ।। साद-६.१०७ ।।

यथा तत्रैव---अर्जुनः-आर्य ! प्रसीद किमत्रक्रोधेन-- अप्रियाणि करोत्वेष वाचा शक्तो न कर्मणा ।

हतभ्रातृशतो दुःखी प्रलापैरस्य का व्यथा ।।

अथ निर्वहणाङ्गानि ।

सन्धिर्विबोधो ग्रथनं निर्णयः परिभाषणम् ।

कृतिः तप्रसाद आनन्दः समयो ऽप्युपगूहनम् ।। साद-६.१०८ ।।

भाषणं पूर्ववाक्यञ्च काव्यसंहार एव च ।

प्रशस्तिरिति संहारे ज्ञेयान्यङ्गानि नामतः ।। साद-६.१०९ ।।

तत्र---

बीजोपगमनं सन्धिः---

यथा तत्रैव (वेण्याम्)---"भीमः-भवति ! यज्ञवेदिसम्भवे ! स्मरति भवती यन्मयोक्तम्--

"चञ्चद्भुजे" त्यादि" ।

अनेन मुखे क्षिप्तबीजस्य पुनरुपगमनमिति सन्धिः ।

---विबोधः कार्यमार्गणम् ।

यथा तत्रैव---"भीमः--मुञ्चतु मामार्यः क्षणमेकम् ।

युधिष्ठिरः--किमपरमवशिष्टम् ? भीमः--सुमहदवशिष्टम् ।

संयमयामि तावदनेन सुयोधनशोणितोक्षितेन पाणिना पाञ्चाल्या दुःशासनावकृष्टं केशहस्तम् ।

युधिष्ठिरः--गच्छतु भवान्, अनुभवतु तपस्विनी वेणीसंहारम्" इति ।

अनेन केशसंथमनकार्यस्यान्वेषणाद्विबोधः ।

उपन्यासस्तु कार्याणां ग्रथनं---

यथा तत्रैव---भीमः--पाञ्चालि ! न खलु मयि जीवति सहर्ंत्तव्या दुःशासनविलुलिता

वेणिरात्मपाणिभ्याम् ।

तिष्ठ, स्वयमेवाहं संहरमि " इति ।

अनेन कार्यस्योपक्षेपाद्ग्रथनम् ।

---निर्णयः पुनः ।। साद-६.११० ।।

अनुभूतार्थकथनं---

यथा तत्रैव, भीमः--देव अजातशत्रो ! अद्यापि दुर्योधनहतकः ।

मया हि तस्य दुरात्मनः-- भूमौ क्षिप्तं शरीरं निहतमिदमसृक्चन्दनाभं निजाङ्गे तक्ष्मीरार्ये

निषक्ता चतुरुदधिपयः सीमया सार्द्धमुर्व्या ।

भृत्या मित्राणि योधाः कुरुकुलमनुजा दग्धमेतद्रणाग्नौ नामैकं यद्ब्रवीषि क्षितिप ! तदधुना

धार्त्तराष्टस्य शेषम् ।।

---वदन्ति परिभाषणम् ।

परिवादकृतं वाक्यम्---

यथा शाकुन्तले--राजा आर्ये ! अथ सा तत्रभवती किमाख्यस्य राजर्षेः पत्नी ? ।

तापसी--- को तस्स धम्मदारपरिट्टाइणो णामं गेण्हिस्सदि" ।

---लब्धार्थशमनं कृतिः ।। साद-६.१११ ।।

यथा वेण्याम्--"कृष्णः--एते भगवन्तो व्यास--वाल्मीकिप्रभृतयो ऽभिषेकं धारयन्तस्तिष्ठन्ति" इति ।

अनेन प्राप्तराज्यस्याभिषेकमङ्गलैः स्थिरीकरणं कृतिः ।

शुश्रूषादिः प्रसादः स्यात्---

यथा तत्रैव भीमेन द्रौपद्याः केशसंयमनम् ।

---आनन्दो वाञ्छितागमः ।

यथा तत्रैव---"द्रौपदी---विसुमरिदं एदं वावारं णाधस्स पसादेण पुणो वि सिक्खिस्सं" ।

समयो दुःखनिर्याणां---

यथा रत्नावल्याम्--"वासवदत्ता---(रत्नावलीमालिङ्ग्य) समस्सस बहिणिए ! समस्सस" ।

---तद्भवेदुपगूहनम् ।। साद-६.११२ ।।

यत् स्याददद्भुतसम्प्राप्तिः--

यथा मम प्रभावत्यां नारददर्शनात् प्रद्युम्न ऊर्द्ध्वमवलोक्य--- दधद्विद्युल्लेखामिव

कुसुममालां मरिमल-- भ्रमद्भृङ्गश्रेणीध्वनिभिरुपगीतां तत इतः ।

दिगन्तं ज्योतिभिस्तुहिनकरगौरैर्धवलय-- न्नितः कैलासाद्रिः पतति वियतः किं पुनरिदम् ।।

---सामदानादि भाषण्म् ।

यथा चण्डकौशिके--"धर्मः---तदेहि धर्मलोकमधितिष्ठ" ।

पूर्ववाक्यं तु विज्ञेयं यथोक्तार्थोपदर्शनम् ।। साद-६.११३ ।।

यथा वेण्याम्--भीमः--बुद्धैमतिके ! क्व सा भानुमती ।

परिभवतु सम्प्रति पाण्डवदारान्" ।

वरप्रदानसंप्राप्तिः काव्यसंहार इष्यते ।

यथा सर्वत्र---किं ते भूयः प्रियमुपकरोमि" ।

इति ।

नृपदेशादिशान्तिस्तु प्रशस्तिरभिधीयते ।। साद-६.११४ ।।

यथा प्रभावत्याम्--- राजानः सुतनिर्विशेषमधुना पश्यन्तु नित्यं प्रजा जीयसुः

सदसद्विवेकपटवः सन्तो गुणग्राहिणः सस्यस्वर्णसमृद्धयः समधिकाः सन्तु क्षमामण्डले

भूयादव्यभिचारिणी त्रिजगतो भक्तिश्च नारायणो ।।

अत्र चोपसंहारप्रशस्त्योरन्त एकेन क्रमेणैव स्थितिः ।

"इह च मुखसंधौ उपक्षेपपरिन्यासयुक्त्युद्भेदसमाधानानां प्रतिमुखे च परिसर्पणप्रगमनवज्रोपन्यासपुष्पाणां गर्भे ऽभूताहरणमर्गत्रो (तो) टकाधिबलक्षेपाणां विमर्शे ऽपवादशक्तिव्यवसायप्ररोचनादानानां प्राधन्यम् ।

अन्येषां च यथासम्भवं स्थितिः" इति केचित् ।

चतुःषष्टिविधं ह्येतदङ्गं प्रोक्तं मनीषिभिः ।

कुर्यादनियते तस्य संधावपि निवेशनम् ।। साद-६.११५ ।।

रसानुगुणतां वीक्ष्य रसस्यैव हि मुख्यता ।

यथा वेहीसंहारे तृतीयाङ्के दुर्योधनकर्णयोर्महत्संप्रधारणम् ।

एवमन्यत्रापि ।

यत्तु रुद्रटादिभिः "नियम एव " इत्युक्तं तल्लक्ष्याविरुद्धम् ।

इष्टार्थरचनाश्चर्यलाभो वृत्तान्तविस्तरः ।। साद-६.११६ ।।

रागप्राप्तिः प्रयोगस्य गोष्यानां गोपनं तथा ।

प्रकाशनं प्रकाश्यानामङ्गानां षड्विधं फलम् ।। साद-६.११७ ।।

अङ्गहीनो नरो यद्वन्नैवारम्भक्षमो भवेत् ।

अङ्गहीनं तथा काव्यं न प्रयोगाय युज्यते ।। साद-६.११८ ।।

संपादयेतां संध्यङ्गं नायकप्रतिनायकौ ।

तदभावे पताकाद्यस्तदभावे तथेतरत् ।। साद-६.११९ ।।

प्रायेण प्रधानपुरुषप्रयोज्यानि सन्ध्यङ्गानि भवन्ति ।

किन्तूपक्षेपादित्रयं बीजस्याल्पमात्रसमुद्दिष्टत्वादप्रधानपुरुषप्रयोजितमेव साधु ।

रसव्यक्तिमपेक्ष्यैषामङ्गानां संनिवेशनम् ।

न तु केवलया शास्त्रस्थितिसंपादनेच्छया ।। साद-६.१२० ।।

तथा च यद्वेण्यां दुर्योधनस्य भानुमत्या सह विप्रलम्भो दर्शितः, तत्तादृशे ऽवसरे

ऽत्यन्तमनुचितम् ।

अविरुद्धं तु यद्वृत्तं रसादिव्यक्तये ऽधिकम् ।

तदप्यन्यथयेद्धीमान्न वदेद्वा कदाचन ।। साद-६.१२१ ।।

अनयोरुदाहरणं सत्प्रबन्धेष्वभिव्यक्तमेव ।

अथ वृत्तयः---

शृङ्गारे कौशिकी वीरे सात्त्वत्यारभटी पुनः ।

रसे रौद्रे च बीभत्से वृत्तिः सर्वत्र भारती ।। साद-६.१२२ ।।

चतस्त्रो वृत्तयो ह्येताः सर्वनाट्यस्य मातृकाः ।

स्युर्नायिकादिव्यापारविशेषा नाटकादिषु ।। साद-६.१२३ ।।

तत्र कौशिकी---

या श्लक्षणनेपथ्यविशेषचित्रा स्त्रीसंकुला पुष्कलनृत्यगीता ।

कामोपभोगप्रभवोपचारा सा कौशिकी चारुविलासयुक्ता ।। साद-६.१२४ ।।

नर्म च नर्मस्फूर्जो नर्मस्फोटो ऽथ नर्मगर्भश्च ।

चत्वार्यङ्गान्यस्या---

तत्र---

---वैदग्ध्यक्रीहितं नर्मः ।। साद-६.१२५ ।।

इष्टजनावर्जनकृत्तच्चापि त्रिविधं मतम् ।

विहितं शुद्धहास्येन सशृङ्गारभयेन च ।। साद-६.१२६ ।।

तत्र केवलहास्येन विहितं यथा रत्नावल्याम्---"वासवदत्ता--(फलकमुद्दिश्य सहासम्) एसा वि अवरा तव समीवे जधालिहिदा एदं किं अज्जवसन्तस्स विण्णाणम् ।

सश्रृङ्गारहास्येन यथा शाकुन्तले--राजानं प्रति शकुन्तला--असंतुट्ठो उण किं करिस्सदि ।

राजा-- इदमं ।

(इति व्यवसितःशकुन्तलावक्त्रं ढौकते) सभयहास्येन यथा रत्नावल्याम्---

आलेख्यदर्शनावसरे सुसंगता--जाणिदो मए एसो वुत्तन्तो समं चित्तफलएण ।

ता देवीए गदुअ निवेदैस्सम् ।

एतद्वाक्यसम्बन्धि नर्मोदाहृतम् ।

एवं वेषचेष्टासम्बन्ध्यपि ।

नर्मस्फूर्जः सुखारम्भो भयान्तो नवसंगमः ।

यथा मालविकायाम्--सङ्केतनायकमभिसृतायां "नायकः-- विसृज सुन्दरि ! सङ्गमसाध्वसं ननु चिरात्प्रभृति प्रणयोन्मुखे ।

परिगृहण गते सहकारतां त्वमतिमुक्तलताचरितं मयि" ।।

मालविका--"भट्टा, देवीए भएण अप्पणो वि पिअ कौं ण पारेमि" इत्यादि ।

अथ नर्मस्फोटः---

नर्मस्फोटो भावलेशैः सूचिताल्परसा मतः ।। साद-६.१२७ ।।

यथा मालतीमाधवे--- गमनमलसं शून्या दृष्टिः शरीरमसौष्ठवं श्वसितमधिकं किन्त्वेतत् स्यात् किमदन्यदितो ऽथवा ।

भ्रमति भुवने कन्दर्पाज्ञा विकारि च यौवनं ललितमधुरास्ते ते भावाः क्षिपन्ति च धीरताम् ।।

अलसगमनादिभिर्भावलेशैर्माधवस्य मालत्यामनुरागः स्तोकः प्रकाशितः ।

नर्मगर्भो व्यवहतिर्नेतुः प्रच्छन्नवर्तिनः ।

यथा--तत्रैव सखीरूपधारिणा माधवेन मालत्या मरणव्यवसायवारणम् ।

अथ सात्त्वती---

सात्त्वती बहुला सत्त्व--शौर्यत्यागदयार्जवैः ।। साद-६.१२८ ।।

सहर्षा क्षुद्रशृङ्गारा विशोका साद्भुता तथा ।

उत्थापको ऽथ सांघात्यः संलापः परिवर्त्तकः ।। साद-६.१२९ ।।

विशेषा इति चत्त्वारः सात्त्वत्याः परिकीर्त्तिः ।

उत्तेजनकरी शत्रोर्वागुध्यापक उच्यते ।। साद-६.१३० ।।

यथा महावीरचरिते--- आनन्दाय च विस्मयाय च मया दृष्टो ऽसि दुःखाय वा वैतृष्ण्यन्तु ममापि सम्प्रति कुतस्त्वद्दर्शने चक्षुषः ।

त्वत्साङ्गत्यसुखस्य नास्मि विषयस्तत् किं वृथा व्याहृतैः ? अस्मिन् विश्रुतजामदग्न्यदमने पाणौ धनुर्जृम्भताम् ।।

मन्त्रार्थदैवशक्त्यादेः साघात्यः सङ्घभेदनम् ।

मन्त्रशक्त्या यथा---मुद्राराक्षसे राक्षससायानां चाणक्येन स्वबुद्ध्या भेदनम् ।

अर्थशक्त्यापि तत्रैव ।

दैवशक्त्या यथा---रामायणो रावणाद्विभीषणस्य भेदः ।

संलापः स्याद्गभीराक्तिर्नानाभावसमाश्रयः ।। साद-६.१३१ ।।

यथा वीरचरिते---"रामः--अयं सः, यः किल सपरिवारकार्त्तिकेयविजयावजीतेन भगवता

नीललोहिते परिवत्सरसहस्त्रान्तेवासिने तुभ्यं प्रसादीकृतः परशुः ।

परशुरामः--राम दाशरथे ! स एवायमार्यपादानां प्रियः परशुः ।

"इत्यादि ।

प्रारब्धादन्यकार्याणां कारणं परिवर्तकः ।

यथा वेण्याम्---"भामः---सहदेव ! गच्छ त्वं गुरुमनुवर्तस्व ।

अहमप्यस्त्रागारं प्रविश्यायुधसहायो भवामीति यावत् ।

अथवा आमन्त्रयितव्यैव मया पाञ्चाली" ।

इति ।

अथारभटी---

मायेन्द्रजालसंग्रामक्रोधोद्भ्रान्तादिचेष्टितैः ।। साद-६.१३२ ।।

संयुक्ता वधबन्धाद्यैरुद्धतारभटी मता ।

वस्तूत्थापनसंफैटौ संक्षिप्तिरवपातनम् ।। साद-६.१३३ ।।

इति भेदास्तु चत्वार आरभट्याः प्रकीर्तिताः ।

मायाद्युत्थापितं वस्तु वस्तुत्थापनमुच्यते ।। साद-६.१३४ ।।

यथोदात्तराघवे--- जीयन्ते जयिनो ऽपि सान्द्रतिमिरव्रातैर्वियद्व्यापिभिर्- भास्वन्तः सकला

रवेरपि कराः कस्मादकस्मादमी ।

एते चोग्रकबन्धकण्ठरुधिरैराध्मायमानोदरा मुञ्चन्त्याननकंदरानलमुचस्तीव्रान् रवान् फेरवाः

।।

इत्यादि ।

संफेटस्तु समाघातः क्रुद्धसत्वरयोर्द्वयोः ।

यथा मालत्यां माधवाघोरघण्टयोः ।

संक्षिप्ता वस्तुरचना शिल्पैरितरथापि वा ।। साद-६.१३५ ।।

संक्षिप्तिः स्यान्निवृत्तौ च नेतुर्नेत्रन्तरग्रहः ।

यथोदयनचरिते कलिङ्गहस्तिप्रयोगः ।

द्वितीयं यथा वालिनिवृत्त्या सुग्रीवः ।

यथा वा परशुरामस्यौद्धत्यनिवृत्त्या शान्तत्वापादनम्--"पुण्या ब्राह्मणजातिः--ऽिति ।

प्रवेशत्रासनिष्क्रान्तिहर्षविद्रवसंभवम् ।। साद-६.१३६ ।।

अवपातनमित्युक्तं---

यथा कृत्यरावणो षष्ठे ऽङ्के--"(प्रविश्य खङ्गहस्तः पुरुषः)" इत्यतः प्रभृति निष्क्रमणपर्यन्तम् ।

---पूर्वमुक्तैक भारती ।

अथ नाट्योक्तयः---

अश्राव्य खलु यद्वस्तु तदिह स्वगतं मतम् ।। साद-६.१३७ ।।

सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात्तद्भवेदपवारितम् ।

रहस्यं तु यदन्यस्य परावृत्य प्रकाश्यते ।। साद-६.१३८ ।।

त्रिपताककरेणान्यानपवार्यान्तरा कथाम् ।

आन्योन्यामन्त्रणं यत्स्यात्तज्जनान्ते जनान्तिकम् ।। साद-६.१३९ ।।

किं व्रवीषीति यन्नाट्ये विना पात्रं प्रयुज्यते ।

श्रुत्वेवानुक्तमष्यर्थं तत्स्यादाकाशभाषितम् ।। साद-६.१४० ।।

यः कश्चिदर्थो यस्माद्गोपनीयस्तस्यान्तरत ऊर्ध्वं सर्वाङ्गुलिनामितानामिकं त्रिपताकलक्षणं करं कृत्वान्येन सह यन्मन्त्र्यते तज्जनान्तिकम् ।

परावृत्यान्यस्य रहस्यकथनमपवारितम् ।

शेषं स्पष्टम् ।

दत्तां सिद्धां च सेनां च वेश्यानां नाम दर्शयेत् ।

दत्तप्रयाणि वणिजां चेटचेट्योस्तथा पुनः ।। साद-६.१४१ ।।

वसन्तादिषु वर्ण्यस्य वस्तुनो नाम यद्भवेत् ।

वेश्या यथा वसन्तसेनादिः ।

वणिग्विष्णुदत्तादिः ।

चेटः कलहंसादिः ।

चेटी मन्दारिकादिः ।

नाम कार्यं नाटकस्य गर्भितार्थप्रकाशकम् ।। साद-६.१४२ ।।

यथा रामाभ्युदयादिः ।

नायिकानायकाख्यानात्संज्ञा प्रकरणादिषु ।

यथा मालतीमाधवादिः ।

नाटिकासट्टकादीनां नायिकाभिर्विशेषणम् ।। साद-६.१४३ ।।

यथा रत्नावली-कर्पूरमञ्जर्यादिः ।

प्रायेण ण्यन्तकः साधिर्गमेः स्थाने प्रयुज्यते ।

यथा शाकुन्तले--ऋषी, "गच्छावः" इत्यर्थे "साधयावस्तावत्" ।

राजा स्वमीति देवेति भृत्यैर्भट्टेति चाधमैः ।। साद-६.१४४ ।।

राजषिभिर्वयस्येति तथा विदूषकेण च ।

राजन्नित्यृषिभिर्वाच्यः सो ऽपत्यप्रत्ययेन च ।। साद-६.१४५ ।।

स्वेच्छया नामभिविप्रविप्र आर्येति चेतरैः ।

वयस्येत्यथवा नाम्ना वाच्यो राज्ञा विदूषकः ।। साद-६.१४६ ।।

वाच्यौ नटीसूत्रधारावार्यनाम्ना परस्परम् ।

सूत्रधारं वदेद्भाव इति वै पारिपार्श्विकः ।। साद-६.१४७ ।।

सूत्रधारो मारिषेति हण्डे इत्यधमैः समाः ।

वयस्येत्युत्तमैर्हहो मध्यैरार्येति चाग्रजः ।। साद-६.१४८ ।।

भगवन्निति वक्तव्याः सर्वैर्देवर्षिलिङ्गिनः ।

वदेद्राज्ञीं च चेटीं च भवतीति विदूषकः ।। साद-६.१४९ ।।

आयुष्मन् रथिनं सूतो वृद्धं तातेति चेतरः ।

वत्सपुत्रकताततेति नाम्ना गोत्रेण वा सुतः ।। साद-६.१५० ।।

शिष्यो ऽनुजश्च वक्तव्यो ऽमात्य आर्येति चाधमैः ।

विप्रैरयममात्येति सचिवेति च भण्यते ।। साद-६.१५१ ।।

साधो ! इति तपस्वी च प्रशान्तश्चोच्यते बुधैः ।

स्वगृहीताभिधः पूज्यः शिष्याद्यैर्विनिगद्यते ।। साद-६.१५२ ।।

उपाध्यायेति चाचार्यो महाराजेति भूपतिः ।

स्वामीति, युवराजस्तु कुमारो भर्तृदारकः ।। साद-६.१५३ ।।

भद्रसौम्यमुखेत्येवमधमैस्तु कुमारकः ।

वाच्या प्रकृतिभी राज्ञः कुमारी भर्तृदारिका ।। साद-६.१५४ ।।

पतिर्यथा तथा वाच्या ज्येष्ठमध्याधमैः स्त्रियः ।

हलेति सदृशी, प्रेष्या हञ्जे वेश्याज्जुका तथा ।। साद-६.१५५ ।।

कुट्टिन्यम्बेत्यनुगतैः पूज्या च जरती जनैः ।

आमन्त्रणैश्च पाषण्डा वाच्याः स्वसमयागतैः ।। साद-६.१५६ ।।

शका (शक्या) दयश्च संभाष्या भद्रदत्तादिनामभिः ।

यस्य यत्कर्म शिल्पं वा विद्या वा जातिरेव वा ।। साद-६.१५७ ।।

तेनैव नाम्ना वाच्यो ऽसौ ज्ञेयाश्चान्ये यथोचितम् ।

अथ भाषाविभागः---

पुरुषाणामनीचानां संस्कृतं स्यात्कृतात्मनाम् ।। साद-६.१५८ ।।

सोरसेनी प्रयोक्तव्या तादृशीनां च योषिताम् ।

आसामेव तु गाथासु महाराष्ट्रीं प्रयोजयेत् ।। साद-६.१५९ ।।

अत्रोक्ता मागधी भाषा राजान्तः पुरचारिणाम् ।

चेटानां राजपुत्राणां श्रेष्ठानां चार्धमगधी ।। साद-६.१६० ।।

प्राच्यां विदूषकादीनां, धूर्तानां स्यादवन्तिजा ।

योधनागरिकादीनां दाक्षिणात्या हि दीव्यताम् ।। साद-६.१६१ ।।

शवराणां शकादानां शाबरीं संप्रयोजयेत् ।

बाह्लीकभाषोदीच्यानां द्राविडी द्राविडादिषु ।। साद-६.१६२ ।।

आभीरेषु तथाभीरी चाण्डाली पुक्कसादिषु ।

आभीरी शाबरी चापि काष्ठपात्रोपजीविषु ।। साद-६.१६३ ।।

तथैवाङ्गारकारादौ पैशाची स्यात्पिशाचवाक् ।

चेटीनामष्यनीचानामपि स्यात्सौरसेनिका ।। साद-६.१६४ ।।

बालानां षण्डकानां च नीचग्रहविचारिणाम् ।

उन्मत्तानामातुराणां सैव स्यात्संस्कृतं क्वचित् ।। साद-६.१६५ ।।

ऐश्वर्येण प्रमत्तस्य दारिद्र्योपद्रुतस्य च ।

भिक्षु वल्कधरादीनां प्राकृतं संप्रयोजयेत् ।। साद-६.१६६ ।।

संस्कृतं संप्रयोक्तव्यं लिङ्गिनीषूत्तमासु च ।

देवीमन्भिसुतावेश्यास्वपि कैश्चित्तथोदितम् ।। साद-६.१६७ ।।

कार्यतश्चोत्तमादीनां कार्यो भाषाविपर्ययः ।। साद-६.१६८ ।।

योषित्सखीबालवेश्याकितवाप्सरसां तथा ।

वैदग्ध्याथ प्रदातव्यं संस्कृतं चान्तरान्तरा ।। साद-६.१६९ ।।

एषामुदाहरणान्याकरेषु बोद्धव्यानि ।

भाषालक्षणानि मम तातपादानां भाषार्णवे ।

षट्त्रिंशल्लक्षणान्यत्र, नाट्यालंकृतयस्तथा ।

त्रयस्त्रिंशत्प्रयोज्यानि वीथ्यङ्गानि त्रयोदश ।। साद-६.१७० ।।

लास्याङ्गानि दश यथालाभंरसव्यपेक्षया ।

यथालाभं प्रयोज्यानीति सम्बन्धः ।

अत्रेति नाटके ।

तत्र लक्षणानि--

भूषणाक्षरसंघातौ शोभोदाहरणं तथा ।। साद-६.१७१ ।।

हेतुसंशयदृष्टान्तास्तुल्यतर्कः पदोच्चयः ।

निदर्शनाभिप्रायौ च प्राप्तिर्विचार एव च ।। साद-६.१७२ ।।

दिष्टोपदिष्टे च गुणातिपातातिशयौ तथा ।

विशेषणनिरुक्ती च सिद्धिभ्रंशविपर्ययौ ।। साद-६.१७३ ।।

दाक्षिण्यानुनयौ मालार्थापत्तिर्गर्हणं तथा ।

पृच्छा प्रसिद्धिः सारूप्यं संक्षेपो गुणकीर्तनम् ।। साद-६.१७४ ।।

लेशो मनोरथो ऽनुक्तसिद्धिः प्रियवचस्तथा ।

तत्र---

लक्षणानि गुणैः सालंकारैर्योगस्तु भूषणम् ।। साद-६.१७५ ।।

यथा---आक्षिपन्त्यरविन्दानि मुग्धे ! तव मुखश्रियम् ।

कोषदण्डसमग्रणां किमेषामस्ति दुष्करम् ।।

वर्णनाक्षरसंघातश्चित्रार्थैरक्षरैर्मितैः ।

यथा शाकुन्तले--"राजा---कच्चित्सखीं वो नातिबाधते शरीरसंतापः ।

प्रियंवदा--सम्पदं लधोसहो उअसमं गमिस्सदि" ।

सिद्धैरर्थैः समं यत्राप्रसिद्धोर्ऽथः प्रकाशते ।। साद-६.१७६ ।।

श्लिष्टश्लक्षणचित्रार्था सा शोभेत्यभिधीयते ।

यथा--- "संद्वंशसम्भवः शुद्धः कोटिदो ऽपि गुणान्वितः ।

कामं धनुरिव क्रूरो वर्जनीयः सतां प्रभुः ।

यत्र तुल्यार्थयुक्तेन वाक्येनाभिप्रदर्शनात् ।। साद-६.१७७ ।।

साध्यते ऽभिमतश्चार्थस्तदुदाहरणं मतम् ।

यथा--- अनुयान्त्या जनातीतं कान्तं साधु त्वया कृतम् ।

का दिनश्रीर्विनार्केण का निशा शशिना विना ।।

हेतुर्वाक्यं समासोक्तमिष्टकृद्धतुदर्शनात् ।। साद-६.१७८ ।।

यथा वेण्यां भीमं प्रति "चेटी--एवं मए भणिदं भाणुमदि तुह्माणं अमुक्केसु केसेसु कहं देवीए केसा संजमिअन्तित्ति ।

संशयो ऽज्ञाततत्त्वस्य वाक्ये स्याद्यदनिश्चयः ।

यथा ययातिविजये--- इयं स्वर्गाधिनाधस्य लक्ष्मीः किं यक्षकन्यका ।

किं चास्य विषयस्यैव देवता किमु पार्वती ।।

दृष्टान्तो यस्तु पक्षेर्ऽथसाधनाय निदर्शनम् ।। साद-६.१७९ ।।

यथा वेण्याम् --"सहदेवः---आर्य ! उचितमेवैतत्तस्या यतो दुर्योधनकलत्रं हि सा" इत्यादि ।

तुल्यतर्को यदर्थेन तर्कः प्रकृतिगामिना ।

यथा तत्रैव--- प्रयेणैव हि दृश्यन्ते कामं स्वप्नाः शुभाशुभाः ।

शतसंख्या पुनरियं सानुजं स्पृशतीव माम् ।।

संचयोऽथानुरूपो यः पदानां स पदोच्चयः ।। साद-६.१८० ।।

यथा शाकुन्तले--- अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू ।

कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु संनद्धम् ।।

अत्र पदपदार्थयोः सौकुमार्यं सदृशमेव ।

यत्रार्थानां प्रसिद्धानां क्रियते परिकीर्तनम् ।

परपक्षव्युदासार्थं तन्निदर्शनमुच्यते ।। साद-६.१८१ ।।

यथा--क्षात्रधर्मोचितैर्धर्मैरलं शत्रुवधे नृपाः ।

किं तु बालिनि रामेण मुक्तो बाणः पराङ्मुखे ।।

अभिप्रायस्तु सादृश्यादभूतार्थस्य कल्पना ।

यथा शाकुन्तले--- इदं किलाव्याजमनोहरं वपुस्तपः क्लमं साधयितुं य इच्छति ।

ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया समिल्लतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति ।।

प्राप्तिः केनचिदंशेन किञ्चिद्यत्रानुमीयते ।। साद-६.१८२ ।।

यथा मम प्रभावत्याम्--"अनेन खलु सर्वतश्चरता चञ्चरीकेणावश्यं विदिता भविष्यति प्रियतमा मे प्रभावती" ।

विचारो युक्तिवाक्यैर्यदप्रत्यक्षार्थसाधनम् ।

यथा मम चन्द्रकलायाम्---"राजा---नूनमियमन्तः पिहितमदनविकारा वर्तते ।

यतः-- "हसति परितोषरहितं निरीक्ष्यमाणापि नेक्षते किञ्चित् ।

सख्यामुदाहरन्त्यामसमञ्जसमुत्तरं दत्ते" ।।

देशकालस्वरूपेणा वर्णना दिष्टमुच्यते ।। साद-६.१८३ ।।

यथा वेण्याम्--"सहदेवः-- "यद्वैद्युतमिव ज्योतिरार्ये क्रुद्धे ऽद्य संभृतम् ।

तत्प्रावृडिव कृष्णोयं नूनं संवर्धयिष्यति" ।।

उपदिष्टं मनोहारि वाक्यं शास्त्रानुसारतः ।

यथा शाकुन्तले--- शुश्रूषस्व गुरून्, कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने, भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः ।

भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्यष्वनुत्सेकिनी, यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो, वामाः कुलस्याधयः ।।

गुणातिपातः कार्यं यद्विपरीतं गुणान्प्रति ।। साद-६.१८४ ।।

यथा मम चन्द्रकलायां चन्द्रं प्रति--- जै संहरिज्जै तमो धेप्पै सअलेहि ते पाओ ।

वससि सिरे पसुबैणो तहवि ह इत्थीअ जीअणं हरसि ।।

यः सामान्यगुणोद्रेकः स गुणातिशयो मतः ।

यथा तत्रैव---"राजा---(चन्द्रकलाया मुखं निदिश्य) असावन्तश्चञ्चद्विकचनवनीलाब्जयुगल-

स्तलस्फूर्जत्कम्बनविलसदलिसंघात उपरि ।

विना दोषासङ्गं सततपरिपूर्णाखिलकलः कुतः प्राप्तश्चन्द्रो विगलितकलङ्कः सुमुखि ! ते ।।

सिद्धानर्थान् बहूनुक्त्वा विशेषोक्तिर्विशेषणम् ।। साद-६.१८५ ।।

यथा---तृष्णापहारी विमलो द्विजावासो जनप्रियः ।

ह्रदः पद्माकरः किन्तु बुधस्त्वं स जलाशयः ।।

पूर्वसिद्धार्थकथनं निरुक्तिरिति कीर्त्यते ।

यथा वेण्याम्---"निहताशेषकौरव्यः---"इत्यादि ।

(३७९ पृ.)

बहूनां कीर्तनं सिद्धिरभिप्रेतार्थसिद्धये ।। साद-६.१८६ ।।

यथा---यद्वीर्यं कूर्मराजस्य यश्च शेषस्य विक्रमः ।

पृथिव्या रक्षणो राजन्नेकत्र त्वयि तत्स्थितम् ।।

दृप्तादीनां भवेद्भ्रंशो वाच्यादन्यतरद्वचः ।

यथा वेण्याम्---कञ्चुकिनं प्रति "दुर्योधनः--- सहभृत्यगणं सबान्धवं सहमित्रं ससुतं

सहानुजम् ।

स्वबलेन निहन्ति संयुगे नचिरात्पाण्डुसुतः सुयोधनम्" ।।

विचारस्यान्यथाभावः संदेहात्तु विपर्ययः ।। साद-६.१८७ ।।

यथा---मत्वा लोकमदातारं संतोषे यैः कृता मतिः . त्वयि राजनि ते राजन्न तथा व्यवसायिनः ।।

दाक्षिण्यं चेष्टया वाचा परचित्तानुवर्तनम् ।

वाचा यथा---प्रसाधय पुरीं लङ्कां राजा त्वं हि बिभीषण ।।

आर्येणानुगृहीतस्य न विघ्नः सिद्धिमन्तरा ।।

एवं चेष्टयापि ।

वाक्यैः स्निग्धैरनुनयो भवेदर्थस्य साधनम् ।। साद-६.१८८ ।।

यथा वेण्याम्---अश्वत्थामानं प्रति "कृपः---दिव्यास्त्रग्रमकोविदे भारद्वाजतुल्यपराक्रमे किं न संभाव्यते त्वयि" ।

माला स्याद्यदभीष्टार्थं नैकार्थप्रतिपादनम् ।

यथा शाकुन्तले---"राजा--- किं शीकरैः क्लमविमर्दिभिरार्द्रवातं सञ्चारयामि नलिनीदलतालवृन्तम् ।

अङ्के निवेश्य चरणावुत पद्मताम्रौ संवादयामि करभोरु ! यथासुखं ते" ।।

अर्थापत्तिर्यदन्यार्थोर्ऽथान्तरोक्तेः प्रतीयते ।। साद-६.१८९ ।।

यथा वेण्याम्---द्रोणो ऽश्वत्थामानं राज्ये ऽभिषेक्तुमिच्छतीति कथयन्तं कर्णं प्रति "राजा---

साधु अङ्गराज ! साधु, कथमन्यथा--- दत्त्वामयं सो ऽतिरथो वध्यमानं किरीटिना ।

सिन्धुराजमुपेक्षेत नैव चेत्कथमन्यथा" ।।

दूषणोद्घोषणायां तु भर्त्सना गर्हणं तु तत् ।

यथा तत्रैव--कर्णं प्रति "अश्वत्थामा-- निर्वीर्यं गुरुशापभाषितवशात्किं मे तवेवायुधं सम्प्रत्येव भयाद्विहाय समरं प्राप्तो ऽस्मि किं त्वं यथा ।

जातो ऽहं स्तुतिवंशकीर्तनविदां किं सारथीनां कुले क्षुद्रारातिकृताप्रियं प्रतिकरोप्यस्त्रेण नास्त्रेण यत्" ।।

अभ्यर्थनापरैर्वाक्यैः पृच्छार्थान्वेषणं मता ।। साद-६.१९० ।।

यथा तत्रैव---"सुन्दरकः---अज्जा, अवि णाम सारधिदुदिओदिट्ट तुह्मेर्हिं महाराओ दुर्योधणो ण वेत्ति" ।

प्रसिद्धिर्लोकसिद्धार्थैरुत्कृष्टैरर्थसाधनम् ।

यथा विक्रमोर्वश्याम्---"राजा--- सूर्याचन्द्रमसौ यस्य मातामहपितामहौ ।

स्वयं कृतः पतिर्द्वाभ्यामुर्वश्या च भुवा च यः ।।

सारूप्यमनुरूपस्य सारूप्यात्क्षोभवर्धनम् ।। साद-६.१९१ ।।

यथा वेण्याम्--दुर्योधनभ्रान्त्या भीमं प्रति "युधिष्ठिरः---दुरात्मन् !दुर्योधनहतक !-" इत्यादि ।

संक्षेपो यत्तु संक्षेपादात्मान्यार्थे प्रयुज्यते ।

यथा मम चन्द्रकलायाम्---"राजा---प्रिये ! अङ्गानि खेदयसि किं शिरीषकुसुमपरिपेलवानि मुधा ।

(आत्मानं निर्दिश्य---) अयमीहितकुसुमानां सम्पादयिता तवास्ति दासजनः" ।।

गुणानां कीर्तनं यत्तु तदेव गुणाकीर्तनम् ।। साद-६.१९२ ।।

यथा तत्रैव--"नेत्रे खञ्जनगञ्जने सरसिजप्रत्यथि--" इत्यादि (पृ.)

स लेशो भण्यते वाक्यं यत्सादृश्यपुरः सरम् ।

यथा वेण्याम्---"राजा--- हते जरति गाङ्गेये पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ।

या शलाघा पाण्डुपुत्राणां सैवास्माकं भविष्यति" ।।

मनोरथस्त्वभिप्रायस्योक्तिर्भङ्ग्यन्तरेण यत् ।। साद-६.१९३ ।।

यथा---रतिकेलिकलः किंचिदेष मन्मथमन्थरः ।

पश्य सुभ्र ! समालम्भात्कादम्बश्चुम्बति प्रियाम् ।।

विशेषार्थोहविस्तारो ऽनुक्तसिद्धिरुदीर्यते ।

यथा---"गृहवृक्षवाटिकायाम्--- दृश्येते तन्वि ! यावेतौ चारुचन्द्रमसं प्रति ।

प्राज्ञे कल्याणनामानावुभौ तिष्यपुनर्वसू" ।।

स्यात्प्रमाणयितुं पूज्यं प्रियोक्तिर्हर्षभाषणम् ।। साद-६.१९४ ।।

यथा शाकुन्तले--- उदेति पूर्वं कुसुमं ततः फलं घनोदयः प्राक्तदनन्तरं पयः ।

निमित्तनैमित्तिकयोरयं विधिस्तव प्रसादस्य पुरस्तु सम्पदः ।।

अथ नाट्यालङ्काराः--

आशीराक्रन्दकपटाज्ञमागर्वोद्यमाश्रयाः ।

उत्प्रासनस्पृहाक्षोभपश्चात्तापोपपत्तयः ।। साद-६.१९५ ।।

आशंसाध्यवसायौ च विसर्पाल्लेखसंज्ञितौ ।

उत्तेजनं परीवादो नीतिरर्थविशेषणम् ।। साद-६.१९६ ।।

प्रोत्साहनं च साहाय्यमभिमानो ऽनुवर्तनम् ।

उत्कीर्त्तनं तथा याच्ञा परिहारो निवेदनम् ।। साद-६.१९७ ।।

प्रवर्तनाख्यानयुक्तिप्रहर्षाश्चोपदेशनम् ।

इति नाट्यालङ्कृतयो नाट्यभूषणहेतवः ।। साद-६.१९८ ।।

आशीरिष्टजनाशंसा---

यथा शाकुन्तले--- ययातेरिव शमिष्ठा पत्युर्बहुमता भव ।

पुत्रं त्वमपि सम्राजं सेव पूरुमवाप्नुहि ।।

---आकन्दः प्रलपितं शुचौ ।

यथा वेण्याम्--"कञ्चकी--हा देवि ! कुन्ति ! राजभवनपताके !-" इत्यादि ।

कपटं मायया यत्र रूपमन्यद्विभाव्यते ।। साद-६.१९९ ।।

यथाकुलपत्यङ्के--- मृगरूपं परित्यज्य विधाय कपटं वपुः ।

नीयते रक्षसा तेन लक्ष्मणो युधि संशयम् ।।

अक्षमा सा परिभवः स्वल्पो ऽपि" न विषह्यते ।

यथा शाकुन्तले---"राजा--भोः सत्यवादिन् ! अभ्युपगतं तावदस्माभिः ।

किं पुनरिमामभिसन्धाय लभ्यते ।

शार्ङ्गरवः---विनिपातः---ऽित्यादि ।

गर्वो ऽवलेपजं वाक्यं---

यथा तत्रैव---"राजा---ममापि नाम सत्त्वैरभिभूयन्ते गृहाः" ।

---कार्यस्यारम्भ उद्यमः ।। साद-६.२०० ।।

यथा कुम्भाङ्के--"रवणः--पश्यामि शोकविवशो ऽन्तकमेव तावत्" ।

ग्रहणं गुणवत्कार्यहेतोराश्रय उच्यते ।

यथा विभीषणनिर्भर्त्सनाङ्के--"विभीषणः--राममेवाश्रयामि" इति ।

उत्प्रासनं तूपहासो यो ऽसाधौ साधुमानिनि ।। साद-६.२०१ ।।

यथा शाकुन्तले--"शार्ङ्गरवः--राजन् ! अथ पुनः पूर्ववृत्तान्तमन्यसङ्गद्विस्मृतो भवान् ।

तत्कथमधर्मभीरोर्दारपरित्यागः---" इत्यादि ।

आकाङ्क्षा रमणीयत्वाद्वस्तुनो या स्पृहा तु सा ।

यथा तत्रैव---"राजा--- चारुणा स्फुरितेनायमपरिक्षतकोमलः ।

पिपासतो ममानुज्ञां ददातीव प्रियाधरः" ।।

अधिक्षेपवचःकारी क्षोभः प्रोक्तः स एव तु ।। साद-६.२०२ ।।

यथा---त्वया तपस्विचाण्डाल ! प्रच्छन्नवधवर्तिना ।

न केवलं हतो वाली स्वात्मा च परलोकतः ।।

मोहावधीरितार्थस्य पश्चात्तापः स एव तु ।

यथानुतापाङ्के--"रामः--- किं देव्या न विचुम्बितो ऽस्मि बहुशो मिथ्याभिशप्तस्तदा" इति ।

उपपत्तिर्मता हेतोरुपन्यासोर्ऽथसिद्धये ।। साद-६.२०३ ।।

यथा वध्यशिलायाम्--- "म्रियते म्रियमाणो या त्वयि जीवति जीवति ।

तां यदीच्छसि जीवन्तीं रक्षात्मानं ममासुभिः ।।

आशंसनं स्यादाशंसा---

यथा श्मशाने---"माधवः--- "तत्पश्येयमनङ्गमङ्गलगृहं भूयो ऽपि तस्या मुखम्" इति ।

---प्रतिज्ञाध्यवसायकः ।

यथा मम प्रभावत्याम्---"वज्रनाभः--- अस्य वक्षः क्षणोनैव निर्मथ्य गदयानया ।

लीलयोन्मूलयाम्येष भुवनद्वयमद्य वः" ।।

विसर्पो यत्समारब्धं कर्मानिष्टफलप्रदम् ।। साद-६.२०४ ।।

यथा वेण्याम्---"एकस्यैव विपाको ऽयम्--" इत्यादि (३७६ पृ.)

कार्यग्रहणमुल्लेख---

यथा शाकुन्तले---राजानं प्रति "तापसौ---समिदाहरणाय प्रस्थितावावाम् ।

इह चास्मद्गुरोः कण्वस्य कुलपतेः साधिदैवत इव शकुन्तलयानुमालिनीतीरमाश्रमो दृश्यते

।

न चेदन्य (था) कार्यातिपातः, प्रविश्य गृह्यतामतिथैसत्कारः" इति ।

---उत्तेजनमितीष्यते ।

स्वकार्यसिद्धये ऽन्यस्य प्रेरणाय कठोरवाक् ।। साद-६.२०५ ।।

यथा---इन्द्रजिच्चण्डवीर्यो ऽसि नाम्नैव बलवानसि ।

धिग्धिक्प्रच्छन्नरूपेण युध्यसे ऽस्मद्भयाकुलः ।।

भर्त्सना तु परीवादो---

यथा सुन्दराङ्के--"दुर्योधनः धिग् धिक् सूत ! किं कृतवानसि ।

वत्सस्य मे प्रकृतिदुर्ललितस्य पापः पापं विधास्यति--" इत्यादि ।

---नीतिः शास्त्रेण वर्तनम् ।

यथा शाकुन्तले--"दुष्यन्तः---विनीतवेषप्रवेश्यानि तपोवनानि" ।

इति ।

उक्तस्यार्थस्य यत्तु स्यादुत्कीर्तनमनेकधा ।। साद-६.२०६ ।।

उपालम्भविशेषेण तत् स्यादर्थविशेषणम् ।

यथा शाकुन्तले राजानं प्रति "शार्ङ्गरवः--आः कथमिदं नाम, किमुपन्यस्तमिति ? ननु भवानेव नितरां लोकवृत्तान्तनिष्णातः ।

सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयां जनो ऽन्यथा भर्तृमतीं विशङ्कते ।

अतः समीपे परिणेतुरिष्यते प्रियाप्रिया वा प्रमदा स्वबन्धुभिः ।।

प्रोत्साहनं स्यादुत्साहगिरा कस्यापि योजनम् ।। साद-६.२०७ ।।

यथा बालरामायणे--- कालरात्रिकरालेयं स्त्रीति किं विचिकित्ससि ।

तज्जगत्त्रितयं त्रातुं तात ! ताडय ताडकाम् ।।

साहाय्यं सङ्कटे यत्स्यात् सानुकूल्यं परस्य च ।

यथा वेण्याम्--कृपं प्रति "अश्वत्थामा---त्वमपि तावद्राज्ञः पाशर्ववर्तो भव ।

कुपः---वाञ्छाम्यहमद्य प्रतिकर्तुम्--" इत्यादि ।

अभिमानः स एव स्यात्---

यथा तत्रैव---"दुर्योधनः---मातः किमप्यसदृशं कृपणं वचस्ते---" इत्यादि ।

---प्रश्रयादनुवर्तनम् ।। साद-६.२०८ ।।

अनुवृत्तिः---

यथा शाकुन्तले--"राजा---(शकुन्तलां प्रति) अयि ! तपो वर्धते ।

अनुसूयादाणिं अदिधिविसेसलाहेण" इत्यादि ।

---भूतकार्याख्यानमुत्कीर्तनं मतम् ।

यथा बालारामायणे--- अत्रासीत्फणिपाशबन्धनविधिः शक्त्या भवद्देवरे गाढं वक्षसि ताडिते हनुमता द्रोणाद्रिरत्राहृतः ।

इत्यादि ।

याच्ञा तु क्वापि याच्ञा या स्वयं दूतमुखेन वा ।। साद-६.२०९ ।।

यथा----अद्यापि देहि वैदेहिं दयालुस्त्वयि राघवः ।

शिरोभिः कन्दुकक्रीडां किं कारयसि वानरान् ।।

परिहार इति प्रोक्तः कृतानुचितमार्जनम् ।

यथा--प्राणप्रयाणदुःखार्त उक्तवानस्म्यनक्षरम् ।

तत्क्षमस्व विभो ! किं च सुग्रीवस्ते समर्पितः ।।

अवधीरितकर्तव्यकथनं तु निवेदनम् ।। साद-६.२१० ।।

यथा राघवाभ्युदये---"लक्ष्मणः--आर्य ! समुद्राभ्यर्थनया गन्तुमुद्यतो ऽसि तत्किमेतत्" ।

प्रवर्तनं तु कार्यस्य यत्सयात्साधुप्रवर्तनम् ।

यथा वेण्याम्---"राजा---कञ्चुकिन् ! देवस्य देवकीनन्दनस्य बहुमानाद्वत्सस्य भीमसेनस्य विजयमङ्गलाय प्रवर्तन्तां तत्रोचिताः समारम्भाः" ।

आख्यानं पूर्ववृत्तोक्तिर्---

यथा तत्रैव--"देशः सो ऽयमरातिशोणितजलेर्यस्मिन् ह्रदाः पूरिताः--ऽित्यादि ।

---युक्तिरर्थावधारणम् ।। साद-६.२११ ।।

यथा तत्रैव--- यदि समरमपास्य नास्ति मृत्योर्भयमिति युक्तमितो ऽन्यतः प्रयातुम् ।

अख मरणमवश्यमेव जन्तोः किमिति मुधा मलिनं यशः कुरुध्वम् ? ।।

प्रहर्षः प्रमदाधिक्यं---

यथा शाकुन्तले---"राजा - तात्किमिदानीमात्मानं पूर्णमनोरथं नाभिनन्दामि" ।

---शिक्षा स्यादुपदेशनम् ।

यथा तत्रैव--"सहि, ण जुत्तं अस्समवासिणो जणस्स अकिदसक्कारं अदिधिविसेसं

उज्झिअ सच्छन्ददो गमनम्" ।

एषां च लक्षणनाट्यालङ्काराणां सामान्यत एकरूपत्वे ऽपि भेदेन व्यपदेशो

गड्डुलिकाप्रवाहेण ।

एषु च केषांचिद्गुणालङ्कारभावसंध्यङ्गविशेषान्तर्भावे ऽपि नाटके प्रयत्नतः

कर्त्तव्यत्वात्तद्विशेषोक्तिः ।

एतानि च--- पञ्चसन्धि चतुर्वृत्ति चतुः षष्ट्यङ्गसंयुतम् ।

षडविंशल्लक्षणोपेतमलङ्कारोपशोभितम् ।

महारसं महाभोगमुदात्तरचनान्वितम् ।

महापुरुषसत्कारं साध्वाचारं जनप्रियम् ।।

सुश्लिष्टसन्धियोगं च सुप्रयोगं सुखाश्रयम् ।

मृदुशब्दाभिधानं च कविः कुर्यात्तु नाटकम् ।।

इति मुनिनोक्तत्वान्नाटके ऽवश्यं कर्तव्यान्येव ।

वीथ्यङ्गानि वक्ष्यन्ते ।

लास्याङ्गान्याह--

गेयपदं स्थितपाठ्यमासीनं पुष्पगण्डिका ।। साद-६.२१२ ।।

प्रच्छेदकस्त्रिगूढं च सैन्धवाख्यं द्विगूढकम् ।

उत्तमोत्तमकं चान्यदुक्तप्रत्युक्तमेव च ।। साद-६.२१३ ।।

लास्ये दशविधं ह्येतदङ्गमुक्तं मनीषिभिः ।

तत्र--तन्त्रीभाण्डं पुरस्कृत्योपविष्टस्यासने पुरः ।। साद-६.२१४ ।।

शुद्धं गानं गेयपदं---

यथा---गौरीगृहे वीणां वादयन्ती "मलयवती--- उत्फुल्लकलकेसरपरागगौरद्युते ! मम हि गौरि ! ।

अभिवाञ्छितं प्रसिध्यतु भगवति ! युष्मत्प्रसादेन ।।

---स्थितपाठ्यं तदुच्यते ।

मदनोत्तापिता यत्र पठति प्राकृतं स्थिता ।। साद-६.२१५ ।।

अभिनवगुप्तपादास्त्वाहुः---"उपलक्षणं चैतत् ।

क्रोधोद्भ्रान्तस्यापि प्राकृतपठनं स्थितपाठ्यम्" इति ।

निखिलातोद्यरहितं शोकचिन्तान्विताबला ।

अप्रसाधितगात्रं यदासीनासीनमेव तत् ।। साद-६.२१६ ।।

आतोद्यमिश्रितं गेयं छन्दांसि विविधानि च ।

स्त्रीपुंसयोविपर्यासचेष्टितं पुष्पगण्डिका ।। साद-६.२१७ ।।

अन्यासक्तं पतिं मत्वा प्रेमविच्छेदमन्युना ।

वीणापुरःसरं गानं स्त्रियाः प्रच्छेदको मतः ।। साद-६.२१८ ।।

स्त्रीवेषधारिणां पुंसां नाट्यं श्लक्ष्णं त्रिगूढकम् ।

यथा मालत्याम्--"मकरन्दः--एषो ऽस्मि मालतीसंवृत्तः" ।

कश्चन भ्रष्टसंकेतः सुव्यक्तकरणान्वितः ।। साद-६.२१९ ।।

प्राकृतं वचनं वक्तिं यत्र तत्सैन्धवं मतम् ।

करणं वीणादिक्रिया ।

यतुरस्त्रपदं गीतं मुखप्रतिमुखान्वितम् ।। साद-६.२२० ।।

द्विगूढं रसभावाढ्यम्-- ---उत्तमोत्तमकं पुनः ।

क्पप्रसादजमधिक्षेपयुक्तं रसोत्तरम् ।। साद-६.२२१ ।।

हावहेलान्वितं चित्रश्लोकबन्धमनोहरम् ।

उक्तिप्रत्युक्तिसंयुक्तं सोपालम्भमलीकवत् ।। साद-६.२२२ ।।

विलासान्वितगीतार्थमुक्तप्रत्युक्तमुच्यते ।

स्पष्टान्युदाहरणानि ।

एतदेव यदा सर्वैः पताकास्थानकैर्युतम् ।। साद-६.२२३ ।।

अङ्कैश्च दशभिर्धोरा महानाटकमूचिरे ।

एतदेव नाटकम् ।

यथा---बालरामायणम् ।

अथ प्रकरणम् ---

भवेत्प्रकरणो वृत्तं लौकिकं कविकल्पितम् ।। साद-६.२२४ ।।

शृङ्गारो ऽङ्गी नायकस्तु विप्रो ऽमात्यो ऽथवा वणिक् ।

सापायधर्मकामार्थपरो धीर शान्तकः ।। साद-६.२२५ ।।

विप्रनायकं यथा मृच्छकटिकम् ।

अमात्यनायकं मालतीमाधवम् ।

वणिड्नायकं पुष्पभूषितम् ।

नायिका कुलजा क्वापि वेश्या क्वापि द्वयं क्वचित् ।

तेन भेदास्त्रयस्तस्य तत्र भेदस्तृतीयकः ।। साद-६.२२६ ।।

कितवद्यूतकारादिविटचेटकसंकुलः ।

कुलस्त्री पुष्पभूषिते ।

वेश्या तु रङ्गवृत्ते ।

द्वे अपि मृच्छकटिके ।

अस्यनाटकप्रकृतित्वाच्छेषं नाटकवत् ।

अथ भाणः---

भाणः स्याद्धूर्तचरितो नानावस्थान्तरात्मकः ।। साद-६.२२७ ।।

एकाङ्क एक एवात्र निपुणः पण्डितो विटः ।

रङ्गे प्रकाशयेत्स्वेनानुभूतमितरेण वा ।। साद-६.२२८ ।।

संबोधनोक्तिप्रत्युक्तो कुर्यादाकाशभाषितैः ।

सूचयेद्वीरशृङ्गारौ शौर्यसौभाग्यवर्णनैः ।। साद-६.२२९ ।।

तत्रैतिवृत्तमुत्पाद्यं वृत्तिः प्रायेण भारति ।

मुखनिवहणो सन्धी लास्याङ्गानि दशापि च ।। साद-६.२३० ।।

अत्राकाशभाषितरूपपरवचनमपि स्वयमेवानुवदन्नुत्तरप्रत्युत्तरे कुर्यात् ।

शृङ्गारवीररसौ च सौभाग्यशौर्यवर्णनया सूचयेत् ।

प्रायेण भारती, क्वापि कौशिक्यपि वृत्तिर्भवति ।

लास्याङ्गानि गेयपदादीनि ।

उदाहणं लीलामधुकरः ।

अथ व्यायोगः---

ख्यातेतिवृत्तो व्यायोगः स्वल्पस्त्रीजनसंयुतः ।

हीनो गर्भविमर्शाभ्यां नरैर्बहुभिराश्रितः ।। साद-६.२३१ ।।

एकाङ्कश्च भवेदस्त्रीनिमित्तसमरोदयः ।

कैशिकीवृत्तिरहितः प्रख्यातस्तत्र नायकः ।। साद-६.२३२ ।।

राजर्षिरथ दिव्यो वा भवेद्धीरोद्धतश्च सः ।

हास्यशृङ्गारशान्तेभ्य इतरे ऽत्राङ्गिनो रसाः ।। साद-६.२३३ ।।

यथा सौगन्धैकाहरणम् ।

अथ समवकारः---

वृत्तं समवकारे तु ख्यातं देवासुराश्रयम् ।

सन्धयो निर्विमर्शास्तु त्रयो ऽङ्कास्तत्र चादिमे ।। साद-६.२३४ ।।

सन्धी द्वावन्त्ययोस्तद्वदेक एको भवेत्पुनः ।

नायका द्वादशोदात्ताः प्रख्याता देवमानवाः ।। साद-६.२३५ ।।

फलं पृथक्पृथक्तेषां वीरमुख्यो ऽखिलो रसः ।

वृत्तयो मन्दकौशिक्यो नात्र बिन्दुप्रवेशकौ ।। साद-६.२३६ ।।

वीथ्यङ्गानि च तत्र स्युर्यथालाभं त्रयोदश ।

गायत्र्युष्णिङ्मुखान्यत्र च्छन्दांसि विविधानि च ।। साद-६.२३७ ।।

त्रिशृङ्गारस्त्रिकपटः कार्यश्चायं त्रिविद्रवः ।

वस्तु द्वादशनालीभिर्निष्पाद्यं प्रथमाङ्कगम् ।। साद-६.२३८ ।।

द्वितीये ऽङ्के चतसृभिर्द्वाभ्यामङ्केतृतीयके ।

नालिका घटिकाद्वयमुच्यते ।

बिन्दुप्रवेशकौ च नाटकोक्तावपि नेह विधातव्यौ ।

तत्र---

धर्मार्थकामैस्त्रिविधः शृङ्गारः, कपटः पुनः ।। साद-६.२३९ ।।

स्वाभाविकः कृत्रिमश्च दैवजो विद्रवः पुनः ।

अचेतनैश्चेतनैश्च चेतनाचेतनैःकृतः ।। साद-६.२४० ।।

तत्र शास्त्राविरोधेन कृतो धर्मशृङ्गारः ।

अर्थलाभार्थकल्पितोर्ऽथशृङ्गारः ।

प्रहसनशृङ्गारः कामशृङ्गारः ।

तत्र कामशृङ्गारः प्रथमाङ्कः एव ।

अन्ययोस्तु न नियम इत्याहुः ।

चेतनाचेतना गजादयः ।

समवकीर्यन्ते बहवोर्ऽथा अस्मिन्निति समवकारः ।

यथा---समुद्रमथनम् ।

अथ डिमः---

मायेन्द्रजालसंग्रामक्रोधोद्भ्रान्तादिचेष्टितैः ।

उपरागैश्च भूयिष्ठो डिमः ख्यातेतिवृत्तकः ।। साद-६.२४१ ।।

अङ्गी रौद्ररसस्तत्र सर्वे ऽङ्गानि रसाः पुनः ।

चत्वारो ऽङ्का मता नेह विष्कम्भकप्रवेशकौ ।। साद-६.२४२ ।।

नायका देवगन्धर्वयक्षरक्षोमहोरगाः ।

भूतप्रेतपिशाचाद्याः षोडशात्यन्तमुद्धताः ।। साद-६.२४३ ।।

वृत्तयः कौशिकीहीना निर्विमर्शाश्च सन्धयः ।

दीप्ताः स्युः षड्रसाः शान्तहास्यशृङ्गारवर्जिताः ।। साद-६.२४४ ।।

अत्रोदाहरणं च "त्रिपुरदाहः" इति महर्षिः ।

अथेहामृगः--

ईहामृगो मिश्रवृत्तश्चतुरङ्कः प्रकीर्तितः ।

मुखप्रतिमुखे सन्धी तत्र निर्वहणं तथा ।। साद-६.२४५ ।।

नरदिव्यावनियमौ नायकप्रतिनायकौ ।

ख्यातौ धीरोद्धतावन्यो गूढभावादयुक्तकृत् ।। साद-६.२४६ ।।

दिव्यस्त्रियमनिच्छन्तीकपहारादिनेच्छतः ।

शृङ्गाराभासमप्यस्य किञ्चित्किञ्चित्प्रदर्शयेत् ।। साद-६.२४७ ।।

पताकानायका दिव्या मर्त्या वापि दशोद्धताः ।

युद्धमानीय संरम्भं परं व्याजान्निवर्तते ।। साद-६.२४८ ।।

महाध्मानो वधप्राप्ता अपि वध्याः स्युरत्र नो ।

एकाङ्को देव एवात्र नेतेत्याहुः परे पुनः ।। साद-६.२४९ ।।

दिव्यस्त्रीहेतुकं युद्धं नायकाः षडितीतरे ।

मिश्रं ख्याताख्यातम् ।

अन्यः प्रतिनायकः ।

पताकानायकास्तु नायकप्रतिनायकयोर्मिलिता दश ।

नायको मृगवदलभ्यां नायिकामत्र ईहते वाञ्छतीतीहामृगः ।

यथा---कुसुमशेखरविजयादिः ।

अथाङ्कः---

उत्सृष्टिकाङ्क एकाङ्को नेतारः प्राकृता नराः ।। साद-६.२५० ।।

रसो ऽत्र करुणः स्थायी बहुस्त्रीपरिदेवितम् ।

प्रख्यातमितिवृत्तं च कविर्बुद्ध्या प्रपञ्चयेत् ।। साद-६.२५१ ।।

भाणावत्सन्धैवृत्तयङ्गान्यस्मिञ्जयपराजयौ ।

युद्धं च वाचा कर्त्तव्यं निर्वेदवचनं बहु ।। साद-६.२५२ ।।

इसं च केचित् नाटकाद्यन्तः पात्यङ्कपरिच्छेदार्थमुत्सृष्टिकाङ्कनामानम् आहुः ।

अन्ये तु---उत्क्रान्ता विलोमरूपा सृष्टिर्यत्रेत्युत्सृष्टिकाङ्कः ।

यथा--शमिष्ठाययातिः ।

अथ वीथी---

वीथ्यामेको भवेदङ्कः कश्चिदेको ऽत्र कल्प्यते ।

आकाशभाषितैरुक्तैश्चित्रां प्रत्युक्तिमाश्रितः ।। साद-६.२५३ ।।

सूचयेद्भरि शृङ्गारं किञ्चिदन्यान्नसान् प्रति ।

मुखनिर्वहणो सन्धई अर्थप्रकृतयो ऽखिलाः ।। साद-६.२५४ ।।

कश्चिदुत्तमो मध्यमो ऽधमो वा शृङ्गारबहुलत्वाच्चास्याः कौशिकीवृत्तिबहुलत्वम् ।

अस्यास्त्रयोदशाङ्गानि निर्दिशन्ति मनीषिणः ।

उद्धात्य (त) कावलगिते प्रपञ्चस्त्रिगतं छलम् ।। साद-६.२५५ ।।

वाक्केल्यधिबले गण्डमवस्यन्दितनालिके ।

असत्प्रलापव्याहारमृद(मार्द) वानि च तानि तु ।। साद-६.२५६ ।।

तत्रोद्धात्य(त) कावलगिते प्रस्तावनाप्रस्तावे सोदाहरणं लक्षिते ।

मिथो वाक्यमसद्भूतं प्रपञ्चो हास्यकृन्मतः ।

यथा विक्रमोर्वश्याम्--वलीभीस्थविदूषकचेट्योरन्योन्यवचनम् ।

त्रिगतं स्यादनेकार्थयोजनं श्रुतिसाम्यतः ।। साद-६.२५७ ।।

यथा तत्रैव---राजा--- सर्वक्षितिभृतां नाथ !, दृष्टा सर्वाङ्गसुन्दरी ।

रामा रम्ये वनान्ते ऽस्मिन् मया विरहिता त्वया ।।

(नेपथ्ये तत्रैव प्रतिशब्दः) राजा कथं दृष्टेत्याह ।

अत्र प्रश्नवाक्यमेवोत्तरत्वेन योजितम् ।

नटादित्रितयविषयमेवेदमिति कश्चित् ।

प्रियाभैरप्रियैर्वाक्यैर्विलोभ्यच्छलनाच्छलम् ।

यथा वेण्याम्--भीमार्जुनौ--- कर्ता द्यूतच्छलानां, जतुमयशरणोद्दीपनः सो ऽभिमानी राजा दुःशासनादेर्गुरुरनुजशतस्याङ्गराजस्य मित्रम् ।
कृष्णाकेशोत्तरीयव्यपनयनपटुः पाण्डवा यस्य दासाः क्वाऽस्ते दुर्योधनो ऽसौ कथयत, न रुषा, द्रष्टुमभ्यागतौ स्वः ।।

अन्ये त्वाहुश्छलं किञ्चित्कार्यमुद्दिश्य कस्यचित् ।। साद-६.२५८ ।।

उदीर्यते यद्वचनं वञ्चनाहास्यरोषकृत् ।
वाक्केलिर्हास्यसम्बन्धो द्वित्रिप्रत्युक्तितो भवेत् ।। साद-६.२५९ ।।

द्वित्रीत्युपलक्षणम् ।

यथा--- भिक्षो ! मांसनिषेवणं प्रकुरुषे, किं तेन मद्यं विना मद्यं चापि तव प्रियं प्रियमहो वाराङ्गनाभिः सह ।
वेश्याप्यर्थरुचिः कुतस्तव धनं द्यूतेन चौर्येण वा चौर्यद्यूतपरिग्रहो ऽपि भवतो, नष्टस्य कान्या गतिः ।।

केचित्--"प्रक्रान्तवाक्यस्य साकाङ्क्षस्यैव निवृत्तिर्वाक्केलिः" इत्याहुः ।

अन्ये "अनेकस्य प्रश्नस्यैकमुत्तरम्" ।

अन्योन्यवाक्याधिक्योक्तिः स्पर्धयाधिबलं मतम् ।

यथा मम प्रभावत्याम्--वज्रनाभः--- अस्य वक्षः क्षणेनैव निर्मथ्य गदयानया ।

लीलयोन्मूलयाम्येष भुवनद्वयमद्य वः ।।

प्रद्युम्नः---अरे रे असुरापसद ! अलममुना बहुप्रलापेन ।

मम खलु--- अद्य प्रचण्डभुजदण्डसमर्पितोरुकोदण्डनिर्गलितकाण्डसमूहपातैः ।

आस्तां समस्तदितिजक्षतजोक्षितेयं क्षोणिः क्षणेन पिशिताशनलोभनीया ।।

गण्डं प्रस्तुतसंबन्धि भिन्नार्थं सत्वरं वचः ।। साद-६.२६० ।।

यथा वेण्याम्--राजा--- अध्यासितुं तव चिराज्जघनस्थलस्य पर्याप्तमेव करभोरु ! ममोरुग्मम् ।।

अनन्तरम् (प्रविश्य) कञ्चुकी--देव ! भग्नं भग्नम्-इत्यादि ।

अत्र रथकेतनभङ्गार्थं वचनमूरुभङ्गार्थे सम्बन्धे सम्बद्धम् ।

व्याख्यानं स्वरसोक्तस्यान्यथावस्यन्दितं भवेत् ।

यथा छलितरामे--सीता-जाद ! काल्लं क्खु अओज्झाए गन्तव्वम्, तहिं सो राआ विणएण पणयिदव्वो ।

लवः--अथ किमावाभ्यां राजोपजीविभ्यां भवितव्यम् ।

सीता--जाद ! सो क्खु तुम्हाणं पिदा ।

लवः--किमावयो रघुपतिः पिता ।

सीता--(साशङ्कम्) मा अण्णधा सङ्कद्धम्, ण क्खु तुम्हाणं सअलाए ज्जेव पुहवीएत्ति ।

प्रहेलिकैव हास्येन युक्ता भवति नालिका ।। साद-६.२६१ ।।

संवरणकार्युत्तरं प्रहेलिका ।

यथा रत्नावल्याम्---सुसङ्गता---सहि जस्स किदे तुमं आअदा सो इद ज्जेव चिट्ठदि ।

सागरिका--कस्स किदे अहं आअदा सुसङ्गता--णं क्खु चित्तफलअस्स ।

अत्र त्वं राज्ञः कृते आगतेत्यर्थः संवृतः ।

असत्प्रलापो यद्वाक्यमसंबद्धं तथोत्तरम् ।

अगृह्णतो ऽपि मूर्खस्य पुरो यच्च हितं वचः ।। साद-६.२६२ ।।

तत्राद्यं यथा मम प्रभावत्याम्--प्रद्युम्नः-- (सहकारवल्लीमवलोक्य सानन्दम्) अहो

कथमिहैव--- अलिकुलमञ्जुलकेशी परिमलबहला रसावहा तन्वी ।

किसलयपेशलपाणिः कोकिलकलभाषिणी प्रियतम् मे ।।

एवमसंबद्धोत्तरे ऽपि ।

तृतीयं यथा--वेण्यां दुर्योधनं प्रति गान्धारीवाक्यम् ।

व्याहारो यत्परस्यार्थे हास्यक्षोभकरं वचः ।

यथा मालविकाग्निमित्र---(लास्यप्रयोगावसाने मालविका निर्गन्तुमिच्छति) विदूषकः--मा दाव उवदेसमुद्धा गमिस्ससि ।

(इत्युपक्रमेण) गणदासः--(विदूषकं प्रति---) आर्य ! उच्यतां यस्त्वया क्रमभेदो लक्षितः ।

विदूषकः--पढमं बम्भणपूआ भोदि, सा इमाए लङ्घिदा ।

(मालविकास्मयते) इत्यादिना नायकस्य विशुद्धनायिकादर्शनप्रयुक्तेन हासलोभकारिण वचसा व्याहारः ।

दोषा गुणा गुणा दोषा यत्र स्युर्मृदर्(मार्दं)वं हि तत् ।। साद-६.२६३ ।।

क्रमेण यथा--- प्रिय ! जीवितताक्रौर्यं निःस्नेहत्वं कृतघ्नता ।

भूयस्त्वद्दर्शनादेव ममैते गुणतां गताः ।।

तस्यास्तद्रूपसौन्दर्यं भूषितं यौवनश्रिया ।

सुखैकायतनं जातं दुःखायैव ममाधुना ।।

एतानि चाङ्गनि नाटकादिषु सम्भवन्त्यपि वीथ्यामवश्यं विधेयानि स्पष्टतया नाटकादिषु विनिविष्टान्यपीहोदाहृतानि ।

वीथीव नानारसानां चात्र मालारूपतया स्थितत्वाद्वीथीयम् ।

यथा---मालविका ।

अथ प्रहसनम्---

भाणावत्सन्धिसच्ध्यङ्गलास्याङ्गाङ्कैर्विनिर्मितम् ।

भवेत्प्रहसनं वृत्तं निन्द्यानां कविकल्पितम् ।। साद-६.२६४ ।।

अत्र नारभटी, नापि विष्कम्भकप्रवेशकौ ।

अङ्गी हास्यरसस्तत्र वीथ्यङ्गानां स्थितिर्न वा ।। साद-६.२६५ ।।

तत्र---

तपस्विभगद्विप्रप्रभृतिष्वत्र नायकः ।

एको यत्र भवेद्धृष्टो हास्यं तच्छुद्धमुच्यते ।

यथा कन्दर्पकेलिः ।

आश्रित्य कञ्चन जनं संकीर्णमिति तद्विदुः ।। साद-६.२६६ ।।

यथा---धूर्तचरितम् ।

वृत्तं बहूनां धृष्टानां सङ्कीर्णं केचिदूचिरे ।

तत्पुनर्भवति व्यङ्कमथवैकाङ्कनिर्मितम् ।। साद-६.२६७ ।।

यथा--लटकमेलकादिः ।

मुनिस्त्वाह--- वेश्याचेटनपुंसकविटधूर्ता वन्धकी च यत्र स्युः ।

अविकृतवेषपरिच्छचेष्टितकरणं तु सङ्कीर्णम् ।।

इति ।

विकृतं तु विदुर्यत्र षण्ढकञ्चुकितापसाः ।

भुजङ्गचारणभटप्रभृतेर्वेषवाग्युताः ।। साद-६.२६८ ।।

इदं तु सङ्कीर्णेनैव गतार्थमिति मुनिना पृथङ्नोक्तम् ।

अथोपरूपकाणि ।

तत्र नाटिका कॢप्तवृत्ता स्यात् स्त्रीप्राया चतुरङ्किका ।

प्रख्यातो धीरललितस्तत्र स्यान्नायको नृपः ।। साद-६.२६९ ।।

स्यादन्तः पुरसम्बद्धा सङ्गीतव्यापृताथवा ।

नवानुरागा कन्यात्र नायिका नृपवंशजा ।। साद-६.२७० ।।

सम्प्रवर्तेत नेतास्यां देव्यास्त्रासेन शङ्कितः ।

देवो भवेत्पुनर्ज्येष्ठा प्रगल्भा नृपवंशजा ।। साद-६.२७१ ।।

पदे पदे मानवती तद्वशः सङ्गमो द्वयोः ।

वृत्तिः स्यात्कौशिकी स्वल्पविमर्शाः सन्धयः पुनः ।। साद-६.२७२ ।।

द्वयोर्नायिकानायकयोः ।

यथा--रत्नावली---विद्धशालभञ्जिकादिः ।

अथ त्रोटकम्-

सप्ताष्टनवपञ्चाङ्कं दिव्यमानुषसंश्रयम् ।

त्रोटकं नाम तत्प्राहुः प्रत्यङ्कं सविदूषकम् ।। साद-६.२७३ ।।

प्रत्यङ्कसविदूषकत्वादत्र शृङ्गारो ऽङ्गी ।

सप्ताङ्कं यथा--स्तम्भितरम्भम् ।

पञ्चाङ्कं यथा--विक्रमोर्वशी ।

अथ गोष्ठी---

प्राकृतैर्नवभैः पुंभिर्दशभिर्वाप्यलंकृता ।

नोदात्तवचना गोष्ठी कौशिकीवृत्तिशालिनी ।। साद-६.२७४ ।।

हीना गर्भविमर्शाभ्यां पञ्चषड्योषिदन्विता ।

कामशृङ्गारसंयुक्ता स्यादेकाङ्कविनिर्मिता ।। साद-६.२७५ ।।

यथा---रैवतमदनिका ।

अथ सट्टकम्--

सट्टकं प्राकृताशेषपाठ्यं स्यादप्रवेशकम् ।

न च विष्कम्भको ऽप्यत्र प्रचुरश्चाद्भुतो रसः ।। साद-६.२७६ ।।

अङ्का जवनिकाख्याः स्युः स्यादन्यन्नाटिकासमम् ।

यथा---कर्पूरमञ्जरी ।

अथ नाट्यरासकम्---

नाट्यरासकमेकाङ्कं बहुताललयस्थिति ।। साद-६.२७७ ।।

उदात्तनायकं तद्वत्पीठमर्दोपनायकम् ।

हास्यो ऽङ्ग्यत्र सशृङ्गारो नारी वासकसज्जिका ।। साद-६.२७८ ।।

मुखनिर्वहणे सन्धई लास्याङ्गानि दशापि च ।

केचित्प्रतिमुखं सन्धैमिह नेच्छन्ति केवलम् ।। साद-६.२७९ ।।

तत्र सन्धैद्वयवती यथा--नर्मवती ।

सन्धैचतुष्टयवती यथा--विलासवती ।

अथ प्रस्थानकम्--

प्रस्थाने नामको दासो हीनः स्यादुपनायकः ।

दासी च नायिका वृत्तिः कौशिकी भारती तथा ।। साद-६.२८० ।।

सुरापानसमायोगादुद्दिष्टार्थस्य संहृतिः ।

अङ्कौ द्वौ लयतालादिर्विलासो बहुलस्तथा ।। साद-६.२८१ ।।

यथा---शृङ्गारतिलकम् ।

अथोल्लाप्यम्---

उदात्तनायकं दिव्यवृत्तमेकाङ्कभूषितम् ।

शिल्पकाङ्गैर्युतं हास्यशृङ्गारकरुणै रसैः ।। साद-६.२८२ ।।

उल्लाप्यं बहुसंग्राममस्त्रगीतमनोहरम् ।

चतस्रो नायिकास्तत्र त्रयो ऽङ्का इति केचन ।। साद-६.२८३ ।।

शिल्पकाङ्गानि वक्ष्यमाणानि ।

यथा--देवीमहादेवम् ।

अथ काव्यम्---

काव्यमारभटीहीनमेकाङ्कंहास्यसंकुलम् ।

खण्डमात्राद्विपदिकाभग्नतालैरलंकृतम् ।। साद-६.२८४ ।।

वर्णमात्राछड्डुणिकायुतं शृङ्गारभाषितम् ।

नेता स्त्री चाप्युदात्तात्र सन्धी आद्यो तथान्तिमः ।। साद-६.२८५ ।।

यथा---यादवोदयम् ।

अथ प्रेङ्खणम्---

गर्भावमर्शरहितं प्रेङ्खणं हीननायकम् ।

असूत्रधारमेकाङ्कमविष्कम्भप्रवेशकम् ।। साद-६.२८६ ।।

नियुद्धसम्फेटयुतं सर्ववृत्तिसमाश्रितम् ।

नेपथ्ये गीयते नान्दी तथा तत्र प्ररोचना ।। साद-६.२८७ ।।

यथा---वालिवधः ।

अथ रासकम्---

रासकं पञ्चपात्रं स्यान्मुखनिर्वहणान्वितम् ।

भाषाविभाषाभूयिष्ठं भारती कौशिकीयुतम् ।। साद-६.२८८ ।।

असूत्रधारमेकाङ्कं सवीथ्यङ्गं कलान्वितम् ।

श्लिष्टनान्दीयुतं ख्यातनायिकं मूर्खनायकम् ।। साद-६.२८९ ।।

उदात्तभावविन्यससंश्रितं चोत्तरोत्तरम् ।

इह प्रतिमुखं सन्धिमपि केचित्प्रचक्षते ।। साद-६.२९० ।।

यथा---मेनंकाहितम् ।

अथ संलापकम्---

संलापके ऽङ्काश्चत्वारस्त्रयो वा नायकः पुनः ।

पाषण्डः स्याद्रसस्तत्र शृङ्गारकरुणोतरः ।। साद-६.२९१ ।।

भवेयुः पुरसंरोधच्छलसंग्रामविद्रवाः ।

न तत्र वृत्तिर्भवति भारती न च कौशिकी ।। साद-६.२९२ ।।

यथा---मायाकापालिकम् ।

अथ श्रीगदितम्---

प्रख्यातवृत्तमेकाङ्कं प्रख्यातोदात्तनायकम् ।

प्रसिद्धनायिकं गर्भविमर्शाभ्यां विवर्जितम् ।। साद-६.२९३ ।।

भारतीवृत्तिबहुलं श्रीतिशब्देन संकुलम् ।

मतं श्रीगदितं नाम विद्वद्भिरुपरूपकम् ।। साद-६.२९४ ।।

यथा---क्रीडारसातलम् ।

श्रीरासीना श्रीगदिते गायेत्किं चित्पठेदपि ।

एकाड्को भारतीप्राय इति केचित्प्रचक्षते ।। साद-६.२९५ ।।

ऊह्यमुदाहरणम् ।

अथ शिल्पकम्---

चत्वारः शिल्पके ऽङ्काः स्युश्चतस्त्रो वृत्तयस्तथा ।

अशान्तहास्याश्च रसा नायको ब्राह्मणो मतः ।। साद-६.२९६ ।।

वर्णनात्र श्मशानादेर्हेनः स्यादुपनायकः ।

सप्तिविंशतिरङ्गानि भवन्त्येतस्य तानि तु ।। साद-६.२९७ ।।

आशंसातर्कसंदेहतापोद्वेगप्रसक्तयः ।

प्रयत्नग्रथनोत्कण्ठावहित्थाप्रतिपत्तयः ।। साद-६.२९८ ।।

विलासालस्यबाष्पाणि प्रहर्षाश्वासमूढताः ।

साधनानुगमोच्छवासविस्मयप्राप्तयस्तथा ।। साद-६.२९९ ।।

लाभविस्मृतिसंफोटा वैशारद्यं प्रबोधनम् ।

चमत्कृतिश्चेत्यमीषां स्पष्टत्वाल्लक्ष्म नोच्यते ।। साद-६.३०० ।।

संफोटग्रथनयोः पूर्वमुक्तत्वादेव लक्ष्म सिद्धम् ।

यथा---कनकावतीमाधवः ।

अथ विलासिका---

शृङ्गारबहुलैकाङ्का दशलास्याङ्गसंयुता ।

विदूषकविटाभ्यां च पीठमर्देन भूषिता ।। साद-६.३०१ ।।

हीना गर्भविमर्शाभ्यां संधिभ्यां हीननायका ।

स्वल्पवृत्ता सुनेपथ्या विख्याता सा विलासिका ।। साद-६.३०२ ।।

केचित्तु तत्र विलासिकास्थाने विनायिकेति पठन्ति ।

तस्यास्तु "दुर्मल्लिकायामन्तर्भावः" इत्यान्ये ।

अथ दुर्मल्लिका---

दुर्मल्ली चतुरङ्का स्यात् कौशिकीभारतीयुता ।

अगर्भा नागरनरान्यूननायकभूषिता ।। साद-६.३०३ ।।

त्रिनालिः प्रथमो ऽङ्कास्यां विटक्रीडामयो भवेत् ।

पञ्चनालिद्वितीयो ऽङ्को विदूषकविलासवान् ।। साद-६.३०४ ।।

षण्णालिकस्तृतीयस्तु पीठमर्दविलासवान् ।

चतुर्थो दशनालिः स्यादङ्कः क्रीडितनागरः ।। साद-६.३०५ ।।

यथा---बिन्धुमती ।

अथ प्रकरणिका---

नाटिकैव प्रकरणी सार्थवाहादिनायका ।

समानवंशजा नेतुर्भवेद्यत्र च नायिका ।। साद-६.३०६ ।।

मृग्यमुदाहरणम् ।

अथ हल्लीशः---

हल्लीश एक एवाङ्कः सप्ताष्टौ दश वा स्त्रियः ।

वागुदात्तैकपुरुषः कौ (कै) शिकीवृत्तिरुज्ज्वला ।

मुखान्तिमौ तथा सन्धी बहुताललयस्थितिः ।। साद-६.३०७ ।।

यथा---कोलिरैवतकम् ।

अथ भाणिका--

भाणिका श्लक्ष्णनेपथ्या मुखनिर्वहणन्विता ।

कौ (कै) शिकीभारतीवृत्तियुक्तैकाङ्कविनिर्मिता ।। साद-६.३०८ ।।

उदात्तनायिका मन्दनायकात्राङ्गसप्तकम् ।

उपन्यासो ऽथ विन्यासो विबोधः साध्वसं तथा ।। साद-६.३०९ ।।

समर्पणं निवृत्तिश्च संहार इति सप्तमः ।

उपन्यासः प्रसङ्गेन भवेत्कार्यस्य कीर्तनम् ।। साद-६.३१० ।।

निर्वेदवाक्यव्युत्पत्तिर्विन्यास इति स स्मृतः ।

भ्रान्तिनाशो विबोधः स्यान्मिथ्याख्यानं तु साध्वसम् ।। साद-६.३११ ।।

सोपालम्भवचः कोपपीडयेह समर्पणम् ।

निदर्शनस्योपन्यासो निवृत्तिरिति कथ्यते ।। साद-६.३१२ ।।

संहार इति च प्राहुर्यत्कार्यस्य समापनम् ।

स्पष्टान्युदाहरणानि ।

यथा---कामदत्ता ।

एतेषां सर्वेषां नाटकप्रकृतित्वे ऽपि यथैचित्यं यथालाभं नाटकोक्तविशेषपरिग्रहः ।

यत्र च नाटकोक्तस्यापि पुनरुपादानं तत्र तत्सद्भावस्य नियमः ।

अथ श्रव्यकाव्यानि---

श्रव्यं श्रोतव्यमात्रं तत्पद्यगद्यमयं द्विधा ।। साद-६.३१३ ।।

तत्र पद्यमयान्याह---

छन्दोबद्धपदं पद्यं तेन मुक्तेन मुक्तकम् ।

द्वाभ्यां तु युग्मकं सांदानतिकं त्रिभिरिष्यते ।। साद-६.३१४ ।।

कलापकं चतुर्भिश्च पञ्चभिः कुलकं मतम् ।

तत्र मुक्तकं यथा मम--- "सान्द्रानन्दमनन्तमव्ययमजं यद्योगिनो ऽपि क्षणं

साक्षात्कर्तुमुपासते प्रति मुहुर्ध्यानैकतानाः परम् ।

धन्यास्ता मधुरापिरीयुवतयस्तद्ब्रह्म या कौतुका-- दालिङ्गन्ति समलपन्ति शतधाऽकर्षन्ति

चुम्बन्ति च" ।।

युग्मकं यथा मम--- "किं करोषि करोपान्ते कान्ते ! गण्डस्थलीमिमाम् ।

प्रणयप्रवणो कान्ते ऽनैकान्ते नोचिताः क्रुधः ।।

इति यावत्कुरङ्गाक्षीं वक्तुमीहामहे वयम् ।

तावदाविरभूच्चूते मधुरो मधुपध्वनिः" ।।

एवमन्यान्यपि ।

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः ।। साद-६.३१५ ।।

सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः ।

एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवो ऽपि वा ।। साद-६.३१६ ।।

शृङ्गारवीरशान्तानामेको ऽङ्गी रस इष्यते ।

अङ्गानि सर्वे ऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः ।। साद-६.३१७ ।।

इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम् ।

चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत् ।। साद-६.३१८ ।।

आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ।

क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम् ।। साद-६.३१९ ।।

एकवृत्तमयैः पद्यैरवसाने ऽन्यवृत्तकैः ।

नास्तिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह ।। साद-६.३२० ।।

नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते ।

सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत् ।। साद-६.३२१ ।।

संध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः ।

प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः ।। साद-६.३२२ ।।

संभागविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुनाध्वराः ।

रणप्रयाणोपयममन्त्रमुत्रोदयादयः ।। साद-६.३२३ ।।

वर्णनीया यथायोगं साङ्गोपाङ्गा अमी इह ।

कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा ।। साद-६.३२४ ।।

नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु ।

सन्ध्यङ्गानि यथालाभमत्र विधेयानि "अवसाने ऽन्यवृत्तकैः" इति बहुवचनमविवक्षितम् ।

साङ्गोपाङ्गा इति जलकेलिमधौपानादयः ।

यथा---रघुवंश---शिशुपालवः---नैषधादयः ।

यथा वा मम---राघवविलासादिः ।

अस्मिन्नार्षे पुनः सर्गा भवन्त्याख्यानसंज्ञकाः ।। साद-६.३२५ ।।

अस्मिन्महाकाव्ये ।

यथा---महाभारतम् ।

प्राकृतैर्निर्मिते तस्मिन्सर्गा आश्वाससंज्ञकाः ।

छन्दसा स्कन्धकेनैतत्क्वचिद्गलितकैरपि ।। साद-६.३२६ ।।

यथा---सेतुबन्धः ।

यथा वा मम---कुवलयाश्वचरितम् ।

अपभ्रंशनिबद्धे ऽस्मिन् सर्गाः कुडवकाभिधाः ।

तथापभ्रंशयोग्यानि च्छन्दांसि विविधान्यपि ।। साद-६.३२७ ।।

यथा---कर्णपराक्रमः ।

भाषाविभाषानियमात्काव्यं सर्गसमुज्भ्क्तितम् ।

एकार्थप्रवणैः पद्यैः संधिसामग्र्यवर्जितम् ।। साद-६.३२८ ।।

यथा---भिक्षाटनम्, आर्याविलासश्च ।

खण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च ।

यथा---मेघदूतादि ।

कोषः श्लोकसमूहस्तु स्यादन्योन्यानपेक्षकः ।। साद-६.३२९ ।।

व्रज्याक्रमेण रचितः स एवातिमनोरमः ।

सजातीयानामेकत्र सन्निवेशो व्रज्या ।

यथा मुक्तावल्यादिः ।

अथ गाद्यकाव्यानि ।

तत्र गद्यम्---

वृत्तगन्धोज्जितं गद्यं मुक्तकं वृत्तगन्धि च ।। साद-६.३३० ।।

भवेदुत्कलिकाप्रायं चूर्णकं च चतुर्विधम् ।

आद्यं समासरिहितं वृत्तभागयुतं परम् ।। साद-६.३३१ ।।

अन्यद्दीर्घसमासाढ्यं तुर्य चाल्पसमासकम् ।

मुक्तकं यथा---"गुरुर्वचसि पृथुरुरसि--" इत्यादि ।

वृत्तगन्धि यथा मम--

"समरकण्डूलनिविडभुजदण्डकुण्डलीकृतकोदण्डशिञ्जिनीटंकारोज्जागरितवैरिनगर"

इत्यादि ।

अत्र "कुण्डलीकृतकोदण्डऽ--इत्यनुष्टुब्वृत्तस्य पादः, "समरकण्डूल" इति च

प्रथमाक्षरद्वयरिहितस्तस्यैव पादः ।

उत्कलिकाप्रायं यथा ममैव---

"अणिसविसुमरणिसिदसरविसरविदलिदसमरपरिगदपवरपरवल---" इत्यादि ।

चूर्णकं यथा भम--"गुणरत्नसागर ! जगदेकनागर ! कामिनीमदन ! जनरञ्जन !" इत्यादि ।

कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेव विनिमितम् ।। साद-६.३३२ ।।

क्वचिदत्र भवेदार्या क्वचिद्वक्त्रापवक्त्रके ।

आदौ पद्यैर्नमस्कारः खलादेर्वृत्तकीर्तनम् ।। साद-६.३३३ ।।

यथा---कादाम्बर्यादिः ।

आख्यायिका कथावत्स्यात्कवेर्वंशानुकीर्तनम् ।

अस्यामन्यकवीनां च वृत्तं पद्यं क्वचित्क्वचित् ।। साद-६.३३४ ।।

कथांशानां व्यवच्छेद आश्वास इति वध्यते ।

आर्यावक्त्रापवक्त्राणां छन्दसा येन केनचित् ।। साद-६.३३५ ।।

अन्यापदेशेनाश्वासमुखे भाव्यर्थसूचनम् ।

यथा---हर्षचरितादिः ।

"अपि त्वनियमो दृष्टस्तत्राप्यन्यैरुदीरणात्" ।

इति दण्ड्याचार्यवचनात् केचित् आख्यायिका नायकेनैव निबद्धव्या" इत्याहुः, तदयुक्तम् ।

आख्यानादयश्च कथाख्यायिकयोरेवान्तर्भावान्न पृथगुक्ताः ।

यदुक्तं दण्डिनैव---अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति शेषाश्चाख्यानजातयः" ।

इति ।

एषामुदाहरणम्---पञ्चतन्त्रादि ।

अथ गद्यपद्यमयानि---

गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते ।। साद-६.३३६ ।।

यथा---देशराजचरितम् ।

गद्यपद्यमयी राजस्तुतिर्विरुदमुच्यते ।

यथा---विरुदमणिमाला ।

करम्भकं तु भाषाभिविविधाभिर्विनिर्मितम् ।। साद-६.३३७ ।।

यथा मम---षोडशभाषामयी प्रशास्तिरत्नावली ।

एवमन्ये ऽपि भेदा उद्देशमात्रप्रसीद्धत्वादुक्तभेदानतिक्रमाच्च न पृथग्लक्षिताः ।।

इति साहित्यदर्पणो दृश्यश्रव्यकाव्यनिरूपणो नाम षष्ठः परिच्छेदः ।